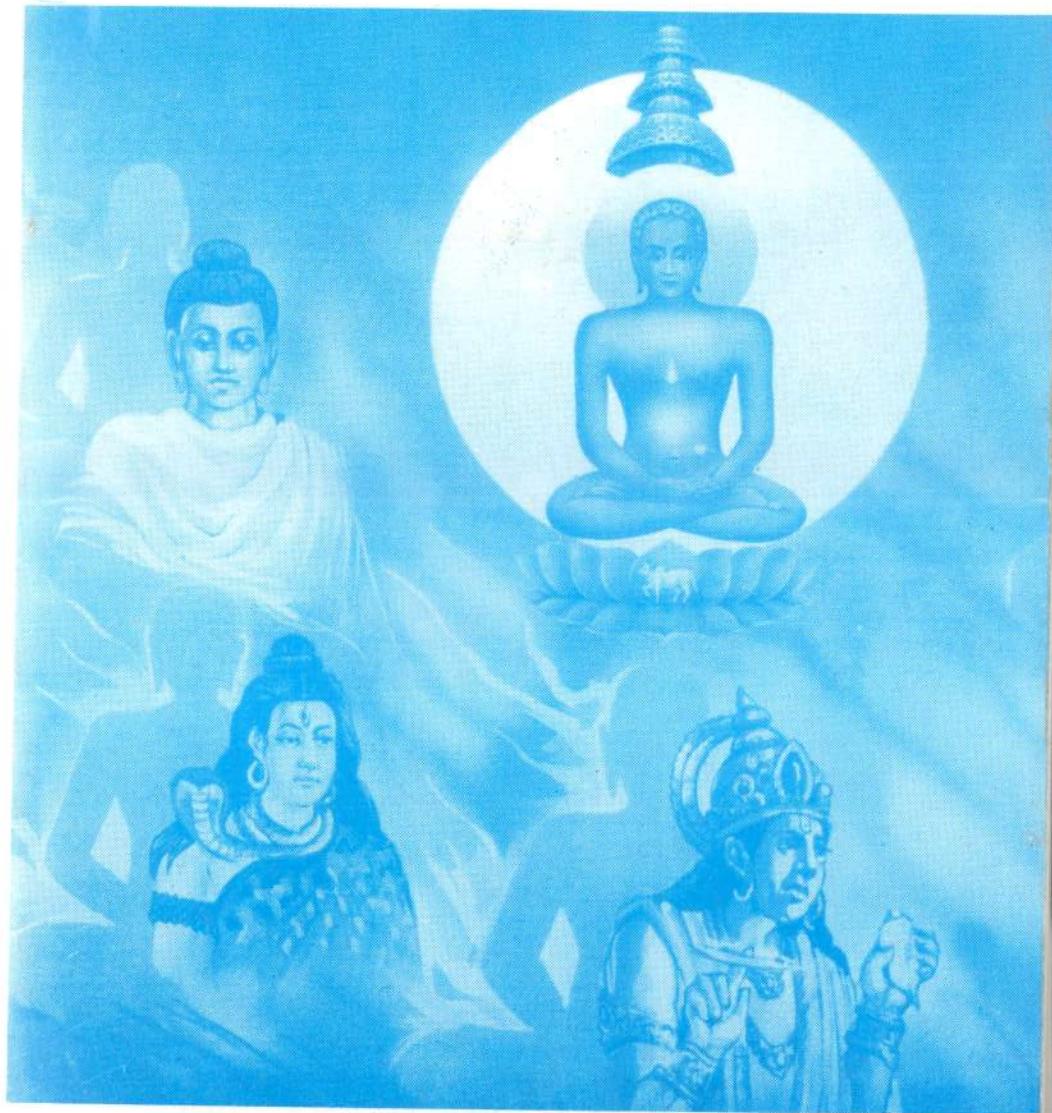


त्रैलोक्य पूज्य बहाचर्य



आचार्य रत्न कनकनन्दीजी

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचार्य

लेखक

आ. रत्न कनकनंदीजी

प्रकाशक

धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान

धर्म दर्शन शोध संस्थान - ग्रन्थांक -39

पुस्तक	त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य
लेखक	आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव
आशीर्वाद	गणधराचार्य कुन्तुसागरजी गुरुदेव
सहयोगी	मुनि श्री कुमार विद्यानंदजी, मुनि श्री आज्ञासागरजी
परम शिरोमणि संस्कक	रमेशचन्द्र कोटविया, मुवंई, अमेरिका प्रवासी
अध्यक्ष	श्री गुणपाल जैन(मुजफ्फरनगर)
कार्याध्यक्ष	श्री गुरुचरण प.म.जैन(वर्कील-मुवंई हाईकोर्ट)
वरिष्ठोपाध्यक्ष	श्री मुशीनचन्द्र जैन-वडौत (मेरठ)
उपाध्यक्ष - (सम्पादन-प्रकाशन) :-	1. श्री प्रभातकुमार जैन(मु.नगर) 2. श्री राजमल पाटोदी (कोटा) 3. श्री रघुवीर मिंह (मु.नगर)
मानद निर्देशक	डॉ. राजमल जैन (उदयपुर)
मंत्री	नेमीचंद्र काला (जयपुर)
संयुक्त मंत्री	श्री पैकज़कुमार जैन (वडौत)
संस्करण	द्वितीय-1999
मूल्य	ज्ञान प्रचारार्थ सहयोग राशि 25-00
प्रतियाँ	:-1000

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :-

- (1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, निकट दि. जैन धर्मशाला, वडौत (मेरठ) ३.प्र.
- (2) नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, मोर्दायाना, जयपुर-३(राज.)
- (3) श्रीमती गन्माला जैन ए/श डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक)
4-5 आदर्श कॉलोनी, पुलां, उदयपुर, फोन (0294) 440793
- (4) श्री गुणपाल जैन, वेहड़ा भवन, ८७/१ कुन्दनपुरा, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
फोन-(0131) 433259

लेस्टर टार्फ प्रेसिंग :-

श्री कुन्तुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
25, शिरोमणि बंगलोज, बड़ौदा एक्सप्रेस हाइवे के सामने,
सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026 फोन -5891771

आशीर्वाद

वर्तमान काल बड़ा निकृष्ट है, प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान शृंख होता जा रहा है। ज्ञान बिना व्यक्ति एक प्रकार का अन्धा होता है। उसको चर्म चक्षु तो रहती है किन्तु ज्ञान चक्षु नहीं रहती। जीव स्वार्थवश कुछ करना ही नहीं चाहता, दूसरों को सिखाना चाहता है लेकिन स्वयं नहीं सीखना चाहता, इसलिए ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। पुस्तकीय ज्ञान तो बहुत बढ़ रहा है लेकिन सम्भवता नहीं आ रही है, विनय नहीं आ रहा है। जिधर देखो उधर अशांति का वातावरण है। ऐसे अशांति के वातावरण में विज्ञान के साथ में धर्म की परम आवश्यकता है और वैसी पुस्तकें भी चाहिये। पुस्तकें तो बहुत हैं लेकिन धार्मिक एवं वैज्ञानिक परक नहीं है। इसलिये हमारे उपाध्याय मुनि कनकनंदीजी सद् साहित्य का प्रचार हो इस भावना से पुस्तकें लिख रहे हैं। यह एक सद् पुरुषार्थ है, जीवों के उपकारी है, ज्ञानवृद्धि का कारण है। आपके सामने अच्छा-अच्छा साहित्य आ रहा है आपके साहित्य की सब जगह प्रशंसा हो रही है, बहुत अच्छी बात है। महाराज श्री के साहित्य को सब लोगों को खूब पढ़ना चाहिये। वास्तव में ही आबाल वृद्धों के पढ़ने लायक है।

वर्तमान विज्ञान के युग में इस प्रकार के साहित्य की परम आवश्यकता है। वस्तु स्वरूप क्या है ? लोगों को मालूम ही नहीं है। उपाध्याय जी के ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है। अब आपके सामने एक और पुस्तक आ रही है, पुस्तक का नाम ‘त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य’ है। पुस्तक बहुत अच्छी है, इस पुस्तक में अच्छी व्याख्या की गई है। लेखक को मेरा आशीर्वाद है। इस पुस्तक के छपवाने वाले द्रव्यवातों को मेरा आशीर्वाद है, आप इसी तरह अपने द्रव्यवातों का सदुपयोग सत् साहित्य प्रचार में लगाते रहें ऐसा मेरा आशीर्वाद है। इसी कार्य में सहयोग करने वाले साधु, साधी, बालिकाएँ, लेक्चरर, प्रोफेसर, मेरा मंगलमय आशीर्वाद। वे सर्व सत्य धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए पूर्ण सत्य स्वरूप बने यह मेरी वीर प्रभु से कामना है। (प्रथम संस्करण से)

मंगल आशीष

“धर्म परलोक के लिए है” ऐसा साधारणतः सामान्य मनुष्य मानते हैं परन्तु यह विचार आंशिक सत्य है। पूर्ण सत्य यह है कि धर्म सर्वथा, सर्वदा, सर्वकाल में सुखकर एवं हितकर है। प्राचीन आचार्यों ने कहा भी है –

“धर्मः सर्वं सुखा करो हितकरो”

Religion is the bestower of all kinds of happiness is beneficial.

अतएव जिससे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, इहलोक, परलोक में सुख मिलता है वही धर्म है। ब्रह्मचर्य से उपरोक्त सम्पूर्ण प्रकार के सुख की उपलब्धि होती है इसलिए ब्रह्मचर्य को भी धर्म कहा गया है। ब्रह्मचर्य से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि होती है तथा आधि, व्याधि, उपाधि का नाश होता है जिससे जीव को उत्तम सुख मिलता है इसलिए भी ब्रह्मचर्य धर्म है। क्योंकि धर्म की परिभाषा करते हुए समन्तभद्रस्वामी ने कहा है – “धर्मकर्मनिवर्हणम्”। संसार दुखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे” अर्थात् धर्म, दुःखदायक कर्म का नाश करके जीवों को सांसारिक दुःख से पार उतार कर उत्तम सुख में धारण करता है।

धर्म यदि सुख देता है तो अधर्म स्वाभाविक रूप से दुःख ही देने वाला है क्योंकि धर्म अधर्म के विपरीत है। अब्रह्मचर्य से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ आधि, व्याधि एवं उपाधि की वृद्धि होती है। जब-जब जिसने भी इस ब्रह्मचर्य धर्म का उल्लंघन किया तब-तब उसको कर्म ने, प्रकृति ने, समाज ने, राजा ने इण्ड देकर उसे अधर्म का दुःखदायी फल चखवाया है। जैसे रावण, चारुदत्त, कडारपिंगल आदि प्राचीन प्रसिद्ध अब्रह्मचारी व्यक्तियों को जो सजा मिली थी वह पुराण प्रसिद्ध है। परन्तु वर्तमान काल में देश-विदेश में जो आधुनिकता के नाम पर स्वच्छन्द रूप से समलिंगी, वेश्या, परस्त्री गमन आदि करते हैं उससे जो एड़स आदि भयंकर रोग फैल रहे हैं यह सर्व विदित है। इतना ही नहीं असंयमित संभोग से जनसंग्र्हया की वृद्धि इतनी बढ़ रही है कि जिसके कारण अनेक समस्यायें उत्पन्न होती जा रही हैं।

यथा खाद्याभाव, कुपोषण, अशिक्षा, आवास की समस्या, कृषियोग्य भूमि का लास, जीवनोपयोगी वस्तु के लिए अधिक उद्योग-कारखाना, यान-वाहन, सड़क, रेल आदि के कारण वायु-शब्द-मृदा-जल-भाव प्रदृष्टण होना तथा इससे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अस्वस्थता आदि। इन सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान ब्रह्मचर्य में निहित है। यदि कोई पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते तो कम से कम आंशिक स्वदार संतोषी नाम का ब्रत पालन करना चाहिए, इसे ही ब्रह्मचर्याणु ब्रत कहा है।

उपरोक्त सिद्धान्तों का वर्णन इस “त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य” पुस्तक में किया गया है। इस कृति में आधुनिक एवं प्राचीन महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक शोध सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, इसके साथ-साथ आचर्यों और मनोविज्ञान का भी समावेश किया गया है।

द्रव्यदाता, सहायकों तथा “धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान,” के कार्य कर्ताओं को मेरा आशीर्वाद।

आ. रत्न कनकनंदीजी

ज्ञान दानी

(1) श्रीमती लक्ष्मी जीन धर्मपत्नी श्री गुरुचटणदास एम.जीन
(वकील मुबंझ हाईकोर्ट)



(2) श्री महेन्द्र कुमारजी शान्तिलालजी दोषी सर्टफि (सलूम्बट)



(3) श्री केशवलालजी भूटाचन्द्रजी दोषी (सलूम्बट)

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	(1) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य धर्म 1 (2) ब्रह्मचर्य साधनोपाय 4 (3) त्रिलोक पूज्य ब्रह्मचर्य 11 (4) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचारी 11 (5) ब्रह्मचर्य से ब्रह्म की प्राप्ति 16 (6) ब्रह्मचर्य की दृढ़ता 19 (7) शील का महात्म्य 28 (8) ब्रह्मचर्य का प्रभाव : वेश्या से श्राविका 37
2.	(1) ब्रह्मधार्ति अब्रह्म 41 (2) अब्रह्म का फल स्त्री की डासता 43 (3) वेश्या की लाश - अतिकामुक मूर्ख 45 (4) परस्त्री त्याग 49 (5) ब्रह्मचर्य पालन में अयोग्य व्यक्ति 50 (6) स्वयं की ही वान्ति स्वयं मत खाओ 52 (7) अब्रह्मचर्य के भेद (10 विध अब्रह्म) 55 (8) कामासक्त व्यक्ति का अति साहस 56 (9) काम सर्पदंश के दस वेग 57 (10) कामान्ध की डशा 58 (11) अब्रह्म का फल 62 (12) अनङ्ग की विश्वविजयी शक्ति 62 (13) ब्रह्मा भी काम से भ्रष्ट हुए 67 (14) काम से भ्रष्ट सात्यकि और रुद्र 68
3.	(1) पुरुष के लिये अद्वितीय अरि 'नारी' 74 (2) स्त्री संसर्ग कामाग्नि उद्दीपक 87

(3) ब्रह्मचर्य नष्ट का ऋम

(4) स्त्री संसर्ग : सर्वथा डोषकर	90
(5) कुल्या स्त्री को दुष्टता	92
(6) कुशील स्त्री महा-राक्षसी	100
(7) कामासक्त का दुष्परिणाम	101
(8) धिक् मदन (धिक् क्राम)	106
4.	(1) अब्रह्म से अपूरणीय क्षति 111 (2) महा अब्रह्म : वेश्या रमण का दुष्परिणाम 118 (3) ब्रह्मचर्य की जैन सूक्ष्मित्याँ 121

**ट्रिरा.वैज्ञानिक संगोष्ठी में सांस्कृतिक कार्यक्रम
प्रस्तुत करते हुए विद्यार्थी**



अध्याय

1

त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचर्य धर्म

मन-वचन-काय से कृत-कारित-अनुमोदना रूप नव कोटि से कामुक प्रवृत्ति को त्याग करके स्वात्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य महागुण है।

कामचेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम-प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है, जिससे मनुष्य में उत्साह, धैर्य, ज्ञान, विज्ञान, विवेक, संयम आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए, स्वास्थ्य सम्पादन करने के लिए, आजीवन युवक रहने के लिए, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिए, नवी-नवी प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उसके साथ-साथ मन से काम-वासना का त्याग, वचन से काम-कथा का त्याग तथा कृत-कारित-अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्रायः 42 दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय हो जाता है। इससे आप लोग अनुमान कर सकते हैं कि अब्रह्मचर्य (मैथुन) से कितनी क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिए पुनः 42 दिन चाहिए। ‘बिन्दु पातं हि मरणं’ अर्थात् वीर्य-स्खलन ही मरण है।

एक बार भोग के समय में संभोग किया से लब्ध्यपर्याप्तक नव लक्ष (9 लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरे पात्र में एक तस लौह खण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं, उसी प्रकार नव लक्ष लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जीव भ्रम हो जाते हैं, यह तो हुई द्रव्य जीव-हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन भोग भोगने का मानसिक मलिन विचार है वह भाव हिंसा है। इस सारे पाप का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में भोगना ही पड़ेगा। इस पाप से पापी छूट नहीं सकता है।

आचार्य कुन्द-कुन्द देव कहते हैं कि ‘तिलोय पूज्य हवड बत्त’ तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सब के लिए सम्भव नहीं है, तथापि पति को स्व-पत्नी से तथा पत्नी को स्व पति से ही सन्तोष रखना चाहिए। उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य सन्तान की उत्पत्ति के लिए भोग करना ब्रह्मचर्य अनुब्रत है।

स्त्री को कम से कम 18 वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहकर विद्या-अध्ययन करना चाहिए। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाते हैं जिससे योग्य, बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा सन्तान की उत्पत्ति होती है। ऋतु स्नान में भोग करना सर्वथा त्वजनीय है। उससे ओज, वीर्य, आयु आदि घटती है। अनेक महारोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश परम्परा से आगे चलकर अपने परिवार, सन्तान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि सन्तान परम्परा के ऊपर दया-करुणा भाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिए। ऋतु स्नान के चौथे दिन से 16 दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी-चतुर्दशी, पूर्णिमा-अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग नहीं करना चाहिए। दिन में भोग करने से आयु क्षीण हो जाती है। अतः दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिए। ऋतु स्नान से लेकर 16 दिनों में किया हुआ स्त्री सम्बन्ध ही गर्भ धारण करने का कारण हो सकता है, अतः सोलह दिन से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री-सम्बन्ध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार संयमित जीवन यापन करने पर कम एवं योग्य सन्तान होगी, जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोग होगी। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव से ही तेज (शरीर की कांति) हीन-वीर्य-हीन, अवांछिनीय अधिक सन्तान की उत्पत्ति होती है। जिससे स्वयं माता-पिता एवं सरकार भी चिंतित है। उसका विरोध करने के लिए अनैतिक साधन के माध्यम से जन्मनिरोध संस्कार कर रहे हैं। इससे शील को ही तिलांजलि दे दी गई है। कोई किसी से भोग करने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण कुकर्म का पता नहीं चलता है, जिससे अनैतिकता, कुशीलता, पापाचार बढ़ रहा है। इसलिए सुखमय जीवन यापन करने के लिए ब्रह्मचर्य अनुब्रत भारत की एक प्राकृतिक वैज्ञानिक जन्म निरोध प्रणाली है। इसको अपनाने से जन्म निरोध (अर्थात् कुटुम्ब नियोजन प्रणाली का ही निरोध हो जायेगा) तथा अर्थ व्यव आदि सब रुक जायेंगे।

जो पर स्त्री गमन करता है या जो स्व स्त्री से अधिक लम्पटता से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। परभव में तेज हीन, वीर्य हीन, दुर्बल शरीर मिलेगा। जो अभी भी अनेक लोग टी.बी. से ग्रसित दिखते हैं और अनेक चर्म रोग एडस एवं ब्लड ड्रॉप्ट द्वारा से विभिन्न रोग से ग्रसित दिखते हैं वे सभी अधिक भोग करने से ही रोगी दिख रहे हैं। अतः ऐसी दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य ही एक मात्र श्रेयस्कर मार्ग है।

पूर्वाचार्यों ने ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए कहा भी है —

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रुवं ।

काम—कहादि—णिरीहो णवविहवंभं हवे तस्स ॥ 403 ॥

कार्तिकयानुप्रेक्षा पृष्ठ 305

जो मुनि श्रियों के संग से बचता है, उसके रूप को नहीं देखता है, काम की कथा आदि नहीं करता है, उसके नवधा ब्रह्मचर्य होता है।

ब्रह्म अर्थात् शुद्ध—बुद्ध आनन्दमय परमात्मा में लीन होने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। अर्थात् परमानन्दमय आत्मा के रस का आस्थादन करना ही ब्रह्मचर्य है। आत्मा को भूलकर जिन वस्तुओं में यह जीव लीन होता है उनमें स्त्री प्रधान है। अतः स्त्री मात्र का, चाहे वह देवांगना हो या मानुषी हो अथवा पशुयोनि हो, संसार जो छोड़ता है, उनके बीच में उठता—बैठता नहीं है, उनके जघन, रत्न, मुख, नयन आदि मनोहर अंगों को देखता नहीं है तथा उनकी कथा नहीं करता उसी के मन—वचन—काय और कृत कारित अनुमोदना के भेद से नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है। जिन शासन में शील के अठारह हजार भेद कहे हैं जो इस प्रकार के हैं— स्त्री दो प्रकार की होती है — अचेतन और चेतन। अचेतन स्त्री के तीन प्रकार हैं — लकड़ी की, पत्थर की और रंग वगैरह से बनाई गई। इन तीन भेदों को मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना उन छः से गुण करने पर 18 भेद होते हैं। उनको पाँच इन्द्रियों से गुण करने पर $18 \times 5 = 90$ भेद होते हैं। इनको द्रव्य और भाव से गुण करने पर $90 \times 2 = 180$ भेद होते हैं। उनको क्रोध, मान, माया और लोभ से गुण करने पर $180 \times 4 = 720$ भेद होते हैं। चेतन स्त्री के भी तीन प्रकार हैं— देवांगना, मानुषी और तिर्यज्ञनी।

इनको कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर $3 \times 3 = 9$ भेद होते हैं। इन्हें पन, वचन, काय से गुणा करने पर $9 \times 3 = 27$ भेद होते हैं। उन्हें पाँच इन्द्रियों से गुणा करने पर $27 \times 5 = 135$ भेद होते हैं। इन्हें द्रव्य और भाव से गुणा करने पर $135 \times 2 = 270$ भेद होते हैं। इनको आहार, भव, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से गुणा करने पर $270 \times 4 = 1080$ (एक हजार अरसा) भेद होते हैं। इनको अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सञ्चलन, क्रोध, मान, लोभ इन सोलह कषायों से गुणा करने पर $1080 \times 16 = 17280$ (सत्रह हजार तो सौ अरसा) भेद होते हैं। इनमें अचेतन स्त्री के सात सौ बीस भेद जोड़ देने से अठारह हजार भेद होते हैं। ये सब विकार के भेद हैं। इन विकारों को त्वागने से शील के अट्ठारह हजार भेद होते हैं। इन भेदों को द्रूसरे प्रकार से गिनाया है। मन, वचन और काय योग को शुभ पन, शुभ वचन और शुभ काय से गुणा करने पर 9 भेद होते हैं। उन्हें चार संज्ञाओं से गुणा करने पर $9 \times 4 = 36$ (छत्तीस) भेद होते हैं। उन्हें पाँच इन्द्रियों से गुणा करने पर $36 \times 5 = 180$ भेद होते हैं। उन्हें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनरप्ति, साधारण वनरप्ति, दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय जीवों की रक्षा रूप दस से गुणा करने पर 1800 भेद होते हैं और उन्हें उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों से गुणा करने पर 18000 भेद होते हैं।

जो णवि जादि वियारं तरुणियणकंडक्ष्व—वाणविद्वोवि ।

सो चेव सूर—सूरो रण—सूरो णो हवे सूरो ॥ 404 ॥

जो तरुणी स्त्री के कटाक्ष रूपी वाणों से छेदे जाने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होता वह शूर सच्चा शूर है, जो संग्राम में शूर है वह शूर नहीं है।

ब्रह्मचर्य साधनोपाय

अचिन्त्यकामभोगीन्द्रविष्वापारमूर्छितम् ।

वीक्ष्य विश्वं विवेकाय यतन्ते योगिनः परम् ॥ 16 ॥

ज्ञानार्थ—अ. 11—काम प्रकोपः

योगीजन लोक को अचिन्तनीय काम रूप महान् सर्प के विष के प्रयोग से मृच्छित देखकर केवल विवेक के लिए स्पष्ट भेद विज्ञान के लिए ही प्रयत्न करते हैं।

(त्रेलोक्य पूज्य वहुचय)

प्राणी के हृदय में जब तक स्व-पर विवेक नहीं होता है, तभी तक यह विषय भोगों में रत रहता है। परन्तु जैसे ही उसे वह विवेक प्राप्त होता है, वैसे ही वह स्त्री आदि को पर व हेय जानकर उनकी ओर से विरक्त होता हुआ संयम व तप में उद्यत हो जाता है। कहा भी है—

**ज्ञानिसंग—तपोध्यानैरप्यसाध्यो रिपुः स्मरः।
देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्येणैव साध्यते॥**

अर्थात् कामदेव रूप शत्रु ज्ञानियों की संर्गाति, तप और ध्यान से भी नहीं जीता जाता है। वह तो केवल शरीर और आत्मा के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए वैराग्य के ही प्रभाव से जीता जाता है।

**स्मरव्यालविषोद्गरैर्वीक्ष्य विश्वं कदर्थितम्।
यमिनः शरणं जग्मुर्विवेकविनितासुतम्॥17॥**

संयमीजन लोक को कामदेव रूप सर्प के विष के उगाल (वमन) से पीड़ित देखकर विवेकरूप गरुड़ पक्षी की शरण में प्राप्त हुये हैं।

अभिप्राय यह है जिस प्रकार गरुड़ पक्षी का आश्रय लेने से सर्प का विष नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार विवेक का आश्रय लेनेसे उस विष के समान भयानक वह कामदेव भी नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि साधुजन काम को वश में करने के लिये उसी स्व-पर विवेक का आश्रय लिया करते हैं।

**असुभानुपस्तिं विहरन्त इन्द्रियेसु सुसंबुतं।
भोजनम्हि च मन्तज्जुं सद्धं आरद्धवीरियं
तं वे नप्सहित मारो वातो सेलं व पव्वतं॥8॥**

धर्मपद यमक व.

अशुभ (रूप की कुरुपता) को देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान् और उद्योगी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगा सकता, जैसे वायु शिलामय पर्वत को।

**अवश्यं यातारश्चरतरमुषित्वाऽपि विषया,
वियोगे को भ्रस्त्यजति न मनो यत्स्वयम्मून्।**

**जन्तुः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः।
व्रस्वयं व्यक्ता ह्येते समसुखमन्तं विदधति ॥16॥**

भृत, वै.श.

चिरकाल तक भाग किये विषय एक न एक दिन अवश्य ही भोगने वाले को छोड़ते हैं, तब यदि उन्हें स्वयं ही छोड़ दिया जाय तो क्या हानि ? फिर भी इनको हम छोड़ने को तैयार नहीं। मनुष्यों को चाहिए कि वे इनको स्वयं छोड़ दें। अपनी इच्छा से विषयों का त्याग करने पर अत्यन्त सुख प्राप्त होता है और यदि विषयों ने छोड़ा तो बड़ा सन्ताप होता है।

**एतामुत्तमनायिकामभिजनावर्ज्या जगत्प्रे यसीं,
मुक्तिश्रीललनां गुणप्रणयिनीं गन्तु तवेच्छा यदि।
तां त्वं संस्कुरु वर्जयान्यवनितावार्तामपिप्रस्फुटं।
तस्यामेव रतिं तनुष्ठ नितरां प्रायेण सेर्षाः स्त्रियः॥128॥**

आ.शा.

हे भव्य ! जो यह मुक्तिरूप सुन्दर महिला उत्तम नायिका है, कुलीन जनों को ही प्राप्त हो सकती हैं, विश्व की प्रियतमा है तथा गुणों से प्रेम करने वाली है, उसको प्राप्त करने की यदि इच्छा है तो तू उसको संरक्षत कर रत्नत्रय रूप अलंकरों से विभूषित कर और दूसरी (लोक-प्रसिद्ध) स्त्री की बात भी न कर। केवल तू उसके विषय में ही अतिशय अनुराग कर, क्योंकि स्त्रियाँ प्रायः ईर्ष्यालू होती हैं।

**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥58॥**

गीता अध्याय 2

कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है वैसे जब—यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषय में से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि रिथर हुई कही जाती है।

This One (the yogi with a Steady equanimous mind steeped in knowledge of Atman), like a tortoise (Shrinking and withdrawing its limbs into its shell), pulls back all his senses (Indriyas) from such objects as afford pleasure to the senses. The wisdom that he has gained is said to be firm.

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ 60 ॥

हे कौन्तेय ! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियाँ ऐसी प्रवल्लशील हैं कि उसके मन को भी जर्वरस्ती हर ले रहा है।

O son of Kunti ! The confusing senses compulsorily lead astray the mind of an enlightened person string for liberation (Moksha).

(The mind of the medhavi: (the highly enlightened wise)) is confused by the senses and makes him lose his wisdom-sam. Only by controlling the senses by 'Vairagya' or detachment and by fasting (as said in the previous verse), will it be possible to achieve control of the mind and perception of the Paramatman-Rag. From this it is clear that it is no wonder that the unenlightened are apt to fall a prey to the force of the senses.

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यत्नेन वाजिनाम् ॥ 88 ॥

विद्वान् की बुद्धि को हरण करने वाली अन्य विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों का शमन करने में प्रवल्लशील होना चाहिए जैसे सारथी घोड़ों के रोकने में प्रवल्लशील होता है।

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणे नोभयात्मकम्।
यस्मिभिते जितावतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ 92 ॥

उभयात्मक (ज्ञान और कर्म दोनों इन्द्रियों में रहने वाला) 11 वाँ मन है जिसके जीतने से ये दोनों इन्द्रियाँ वश में हो जाती है।

इन्द्रियाणं प्रसङ्गे न दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिर्नियच्छति ॥

इन्द्रियों के प्रसङ्ग से ही निःसंदेह मनुष्य दोष को (अर्थम् को) प्राप्त होता है और उसको जीत कर सिद्धि की पाता है।

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यस्चैतान्के वलांस्त्यजेत्।
प्राषणात्सर्वकामनां परित्यागो विशिष्यते ॥ 95 ॥

जो इन सबको प्राप्त करता है, जो इन सबको केवल त्याग देता है (ठोनों में त्यागने वाला ही श्रेष्ठ रहता है) क्योंकि सभी कर्मों को प्राप्त करने की अपेक्षा उसका त्यागना ही श्रेष्ठ होता है।

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तु मसेवया।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ 96 ॥

जैसे विषयों में आसक्त इन्द्रियाँ ज्ञान के वश से हमेशा रोकी जा सकती हैं वैसे ही असेवा से वैसा न करने से वे नियन्त्रण में नहीं की जा सकती है।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा ध्रात्वा च यो नरः।
न हृष्टति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ 98 ॥

जो मनुष्य सुनकर, स्पर्श कर, खाकर और (गन्ध) को पाकर प्रसन्न और उदास नहीं होता है वही जितेन्द्रिय कहलाता है।

जं विक्षितमणाइणां रहियं थीजणेण य।
बंभचरस्स रक्खद्वा आलयं तु निसेवए ॥ 1 ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अ. 16

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए संयमी एकान्त, अनाकीर्ण और स्त्रियों से रहित स्थान में रहे।

मणपल्हायजणणिं कामरागविवद्धणिं।
बंभचेररओ भिक्खू थीकहं तु विवज्जए ॥ 2 ॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु मन में आहताद पैदा करने वाली तथा कामराग को बढ़ाने वाली स्त्री कथा का त्याग करें।

समं च संथवं थीर्हं संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥ 3 ॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु स्त्रियों के साथ परिचय तथा बार-बार वार्तालाप का सदा परित्याग करें।

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य

अंगपत्त्वंग - संटाणं चारुल्लविय-पेहियं ।

बंभचेररओ थीणं चम्खुगिज्ञं विवज्जए॥ 4॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु चक्षु-इन्द्रिय से ग्राही स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, संस्थान आकार, बोलने की सुन्दर मुद्रा तथा कटाक्ष को देखने का परित्याग करें ।

कुइयं रुइयं गीयं हसियं थणिय-कन्दियं ।

बंभचेररओ थीणं सोयगिज्ञं विवज्जए॥ 5॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु, श्रोतेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के कृजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन न सुने ।

हासं किड्डं रइं दप्पं सहसाऽवत्तासियाणि य ।

बंभचेररओ थीणं नाणुचिन्ते कयाइ वि॥ 6॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु, दीक्षा से पूर्व जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, क्रीड़ा, रति, अभिमान और आकरिमक त्रास का कभी भी अनुचिन्तन न करें ।

पणीयं भत्तपाणं तु स्तिप्पं मयविवड्ढणं ।

बंभचेररओ भिक्खु निच्च सो परिवज्जए॥ 7॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु शीघ्र ही कामवासना को बढ़ाने वाले प्रणीत आहार का सदा-सदा परित्याग करे ।

धण्मलद्धं मियं काले जत्तत्थं पाणिहाणवं ।

नाइमतं तु भुंजेज्जा बंभचेररओ सया॥ 8॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु चित्त की स्थिरता के लिए, जीवन यात्रा के लिए उचित समय में धर्म-मर्यादानुसार प्राप्त परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक ग्रहण न करे ।

विभूसं परिवज्जेज्जा सरीरपरिमण्डणं ।

बंभचेररओ भिक्खु सिंगारत्यं न धारए॥ 9॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु विभूषा का त्याग करें । शृंगार के लिए शरीर का मण्डन न करे ।

सदे रुवे य गन्धे य रसे फासे तहेव य ।

पंचविहे कामगुणे निच्च सो परिवज्जए॥ 10॥

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पाँच प्रकार के कामगुणों का सदा त्याग करे ।

आलओ थीजणाइण्णो थीकहा य मणोरमा ।

संथवो चेव नारीणं तासिं इन्द्रियदरिसणं॥ 1 1 ॥

1. स्त्रियों से आकीर्ण स्थान,

2. मनोहर स्त्री-कथा,

3. स्त्रियों का परिचय,

4. उनकी इन्द्रियों को देखना ।

कुइयं रुइयं गीयं हसियं भुत्तासियाणि य ।

पणीयं भत्तपाणं च अइमायं पाणभोयणं॥ 1 2 ॥

5. उनके कृजन, रोदन, गीत और हास्ययुक्त शब्दों को सुनना,

6. भुक्त भोगों और सहावस्थान को स्मरण करना,

7. प्रणीत (पौष्टिक) भोजन पान,

8. मात्रा से अधिक भोजन-पान ।

गतभूसणमिद्दं च कामभोगा य दुज्जया ।

नरस्सत्तगवेसिस्स विसं तालउडं जहा॥ 1 3 ॥

9. शरीर को सजाने की इच्छा,

10. दुर्जय कामभोग-ये दस आत्मगवेषक मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं ।

दुज्जए कामभोगे य निच्च सो परिवज्जए ।

संकट्ठाणाणि सव्वाणि वज्जेज्जा पणिहाणवं॥ 1 4 ॥

एकाग्रचिन वाला मुनि दुर्जय काम-भोगों का सदैव त्याग करे और सब प्रकार के शंका स्थानों से दूर रहे ।

धम्मारामे चरे मिक्खु धिइमं धम्मसारही ।

धम्मारामरए दन्ते बंभचेर -समाहिए॥ 1 5 ॥

जो धैर्यवान है, जो धर्मरथ का चालक सारथि है, जो धर्म के आराम में रत है, जो उन्त है, जो ब्रह्मचर्य में सुसमाहित है, वह भिक्षु धर्म के आराम (बाग)

में विचरण करता है।

देव-दाणव-गन्धवा-जक्ख-रक्खस किन्नरा।

बभ्यारि-नमंसन्ति दुक्करं जे करन्ति तं॥१६॥

जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दाणव, गन्धव, यक्ष, राक्षस, किन्नर सभी नमस्कार करते हैं।

एस धम्मे धुवे निअए सासए · जिणदेसिए।

सिद्धा सिज्जन्ति चाणेण सिज्जिसन्ति तहाथे॥१७॥

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है इस धर्म के द्वारा अनेक साधक सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे।

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य -

विदन्ति परमं ब्रह्म यत्समालम्ब्य योगिनः।

तदद्रतं ब्रह्मचर्यस्तद्वीरधौरे यगोचरम्॥१॥

जिसका आलम्बन लेकर योगीजन उत्कृष्ट होकर आत्मा को जानते हैं तथा जो वीर धुरंधरों का विषय है जिसके द्वारा को वीर धुरंधर ही धारण करते हैं— वह ब्रह्मचर्य ब्रत है।

एकमेव ब्रतं श्लाध्यं ब्रह्मचर्यो जगत्त्रये।

यद्दिशुद्धिं समापन्नाः पूज्यन्ते पूजितैरपि ॥३॥

तीनों लोकों में वह एक ही ब्रह्मचर्य ब्रत प्रशसनीय है, जिसकी विशुद्धि को प्राप्त हो साधुजन पूजित जनों के द्वारा भी पूजे जाते हैं।

ब्रह्मवत्मिदं जीयाच्चरणस्यैव जीवितम्।

स्युः सन्तोऽपि गुणा येन विना क्लेशाय देहिनाम्॥४॥

जिसके विना अन्य गुण विद्यमान होते हुए भी प्राणियों के लिए क्लेश के ही कारण होते हैं, वह चरित्र का प्राणभूत ब्रह्मचर्य ब्रत जीता रहे।

त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचारी

शृङ्गारद्वृमनीरदे प्रचुरतः क्रीडारसस्रोतसि,
प्रद्युम्नप्रियवान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति।

तन्वीने ब्राचकोरपासपाविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ,
धन्यःकोऽपि न विक्रियांकलयात्प्राप्नेनवेयौवने॥ ६४॥

भ्रू. शृंगार

जहाँ शृंगार स्पष्टी वृक्षों को सीधने वाला, काम के लिए रस को बहाने वाला, कामदेव का प्रियवस्तु चातुर्यस्त्र्य मीतियों का समुद्र, कामनियों के नेत्र स्पष्टी चकोरों का चन्द्रमा, सौन्दर्य लक्ष्मी का खंजाना आदि विषय सुलभ हैं, वहाँ नौजवानी के प्राप्त होने पर भी जिसको काम विकार नहीं होता, वह पुरुष धन्य है।

धन्यास्त एव तरलायतलोचनानां,

तास्य्यरूपधनपीनपयोधराणाम्।

क्षामोदरोपरिलसत्विवलीललानां,

दृष्ट्वाकृतिं विकृतिमेतिमनोनयेषाम्॥ ८०॥

वे नर धन्य हैं जिनका मन, चंचल नेत्र वाली, पृष्ठ स्तनों वाली, कृश उदरपर उत्पन्न हुई त्रिवली से शोभायमान तरुणी सुन्दरी को देखकर विकार को प्राप्त नहीं होता।

बाले लीलामुकुलितमयी सुन्दरी दृष्टिपाताः,

किं क्षिप्यन्ते विरम व्यर्थं एष श्रमस्ते।

सम्प्रत्यन्ते वयमपरतं काल्यामास्था वनान्

क्षीणोमोहस्तुणमव जगज्जालमालोकयामः॥ ८१॥

हे सुन्दरी ! अपने भावों को प्रकट करने वाले अधिखिले और सुन्दर कटाक्षों को फेंक रही हो ? छोड़ दे, छोड़ दे, यह परिश्रम व्यर्थ है क्योंकि अब हम कुछ और ही हो गये हैं, अब मेरी आसक्ति समाप्त हो चुकी, अब तो जंगल में ज़रूर की श्रद्धा है, मोह (प्रेम) हृदय से जाता रहा, इस संसाररूपी जाल को तार तरह निस्तन्त्र समझते हैं।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदलप्रभाचोरं

चक्षुः क्षिपति किमभिप्रे तमनया।

गतो महोऽस्माकं स्मरश्वरवाणव्यतिकर-

ज्ञवलज्वाला: शान्तास्तदपि न वराकी विरमति ॥८२॥

यह तरुणी नीलकमल के समान अपने नेत्रों को निरन्तर मुझ पर फेंकती

है. इसमें इसका क्या अभिप्राय है. समझ में नहीं आता। यदि वह अपने प्रेम का पात्र मुझे ब्राना चाहती है तो उसका यह प्रयत्न व्यर्थ है. क्योंकि हमारा मोह अब समाप्त हो चुका, कामदेव रूपी भील के बाणों से उत्पन्न धधकती हुई अग्नि शान्त हो चुकी है. फिर भी वह बाला अपने व्यापार से बाज नहीं आती।

यदा योगाभ्यासव्यसनकृशयोरात्मपनसो—
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किमुतैः।
प्रियाणामालापैरधरमधुभिवक्त्रविधुभिः,
सनिश्चासामोदैः सकुचकलशाऽऽश्लेषसुरतैः॥ ८४॥

योगाभ्यास की लग्न में आसक्त जिस महापुरुष की आत्मा और मन की मैत्री निरन्तर जागरूक रहा करती है, इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले उस भोगी महापुरुष की मिथियों के मधुर भाषण, अधरामृत के पान, मुख्यन्द का चुम्बन और स्तोनों के आलिंगन से युक्त सम्भोग आदि से क्या प्रयोजन?

किं कन्दर्पं करं करथर्यसि किं कोदण्डद्वारितं,
रे रे कोकिलं कोमलं कलखं किं त्वं वृथा वलासे।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरं लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते॥ ८५॥

हे कामदेव! धनुष के टंकार से अपने बाणों को क्यों व्यर्थ बना रहे हो? हे कोकिल! कामोन्मादक मधुर शब्दों का उच्चारण क्यों कर रहे हो? हे सुन्दरी! प्रेम रस से भरे तेरे सुन्दर कटाक्ष अब व्यर्थ हैं, क्योंकि मेरा मन भगवान शंकर के चरणों के ध्यान रूपी अमृत में मग्न है।

यदासीनदज्ञानं स्मरतिमिरसज्जारजनितं,
तदा सर्वं नारीमयमिदशेषं जगदभूत्।
इदानीमस्माकं पटुतर विवेकाज्जदृशां,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते॥ ८६॥

जिस समय कामरूपी अन्धेरे के कारणमनुष्य अज्ञान में डूबा रहता था उस समय उसको सारा जगत् स्त्रीमय दिखाई पड़ता था, परन्तु विवेकरूपी अंजन के लगाने से जब उसकी दृष्टि सम हो गई तब उसको सारा त्रैलोक्य ब्रह्ममय दिखाई देने लगा।

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तथा सृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामाः सरोजिन्यः॥ ८८॥

जो वस्तु जिसको प्रिय नहीं है, उसके सुन्दर होने पर भी उसकी प्राप्ति की इच्छा उसे कभी उत्पन्न नहीं होती। चन्द्रमा परम सुन्दर होने पर भी कर्मालीनी कभी उसको नहीं चाहती।

त्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

यजु. 19/30

ब्रताचरण से ही मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उत्पत्त जीवन की योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा अथवा प्रयत्न की सफलता प्राप्त होती है। दक्षिणा से अपने जीवन के आठशँडों में ऋद्धा और ऋद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधारं पृथिवीं दिवं च॥

अर्थव. 11, 5, 1

ब्रह्मचारी के प्रति सब देवता लोग अनुकूल होकर रहते हैं और वह पृथ्वी और धौ को धारण करता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः।
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे॥

अर्थव. 11, 5, 2

रक्षा करने वाले पितर देव और अन्य सब देवता लोग ब्रह्मचारी के पीछे चलते हैं।

ब्रह्मचारी ब्रह्मा भ्राजद् विभूर्ति।
तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः॥

अर्थव. 11/5/24

ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाला प्रकाशमान ब्रह्मा (समष्टि रूप ब्रह्मा अथवा ज्ञान) को धारण करता है और उसमें समस्त देवता-ओत-प्रोत होते हैं अर्थात् वह समस्त दैवी शक्तियों से प्रकाश और प्रेरणा को प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्मचारी श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति। अर्थव. 11/5/4

ब्रह्मचारी तप और श्रम का जीवन व्यतीत करता हुआ समस्त राष्ट्र के उत्थान में सहायक होता है।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते। अर्थव. 11/5/10

आचार्य ब्रह्मचर्य द्वारा ही ब्रह्मचारियों को अपने शिक्षण और निराक्षण में लेने की योग्यता और क्षमता का सम्पादन करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । अथर्व. 11/517

ब्रह्मचर्य के तप से ही राजा अपने राष्ट्र की रक्षा में समर्थ होता है।

इन्द्रो हि ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरामरत । अथर्व. 11/519

संयत जीवन से रहने वाला मनुष्य ब्रह्मचर्य द्वारा ही अपनी इन्द्रियों को पुष्ट और कल्याणोन्मुख बनाने में, उन्हें कल्याण की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ होता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत । अथर्व. 11/5/19

देवों ने ब्रह्मचर्य और तप की साधना से मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली।

पराचः कामाननुयान्ति वालास्,
ते मृत्योर्यान्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा,
ध्रुवमधुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥

कठोप.

मृढ़ लोग ही बाह्य विषयों के पाएं लगे रहते हैं, वे मृत्यु अर्थात् आत्मा के अधः पतन के विस्तृत जाल में फँस जाते हैं। परन्तु विवेकी लोग अमृतत्व (अपने शाश्वत स्वरूप) को जानकर, अध्रुव (अनित्य) पदार्थों में नित्य तत्त्व की कामना नहीं करते हैं।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो,
यं पश्यन्ति यत्यः क्षीणदोषाः॥

मुण्डकोपनिषद् 3/1/5

यह आत्मा परमात्मा सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन यति (संयत जीवन व्यतीत करने वाले) देखते हैं, वह ज्योतिर्मय शुभ आत्मा इस शरीर के अन्दर वर्तमान है अर्थात् मनुष्य अपने

अन्दर ही अपने विशुद्ध स्वरूप अथवा परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलभ्ये सर्वगन्धीनां विप्रमोक्षः।**

छन्दोग्योपनिषद् 7/26/2

आहार की (इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किए गए विषयों की) शुद्धि होने पर सत्त्व (अन्तःकरण) की शुद्धि होती है। सत्त्व की शुद्धि होने पर ध्रुव अर्थात् स्थायी स्मृति का लाभ होता है। उस स्मृति के लाभ से (अर्थात् सर्वदा जागरूक अमृढ़ ज्ञान की प्राप्ति से) मनुष्य की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं अर्थात् जीवन की समस्त उलझनों का समाधान हो जाता है।

ब्रह्मचर्य से ब्रह्म की प्राप्ति

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थं मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥5 5 ॥

(गीता, द्वि. अध्याय)

हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

O Partha ! when one gives up all desires of head and heart and is pleased with the Atman (self) by the self itself, he is said to be of steady knowledge (a steadfast wise person)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मथश्यैर्विद्येयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥6 4 ॥

परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियाँ रागद्वेष रहित होकर उसके बश में रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियों का व्यापार चलाते हुए चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

A person, bereft of likes and dislikes, though he may be moving amidst sense objects, if he has his mind under control, he attains tranquility and peace.

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥6 5 ॥

(त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य)

चिन की प्रसन्नता से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं और प्रसन्नता प्राप्त हो जाने वाले की बुद्धि तुरन्त ही स्थित हो जाती है।

All sorrows of the one who has attained tranquility of the mind vanish. The intellect of the tranquil minded will soon become steadfast and unswerving.

तस्मायस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 68 ॥

इसलिए हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियाँ चारों ओर के विषयों में से निकलकर उसके वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि रिथर हो जाती है।

O Arjuna of mighty arms ! Hence (since of senses have the capacity to carry away the mind) his knowledge is steadfast, whose senses are completely freed from all sense objects.

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्मम निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ 70 ॥

सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकार रहित होकर विचरता है वही शांति पाता है।

The person who has discarded all sense objects (longings), who is free from desire, from the feeling of 'I' and egoism is liberated from all sorrow and attains peace.

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुद्यति।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ 71 ॥

हे पार्थ ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर वह फिर मोह के वश में नहीं होता और यदि मृत्युकाल में भी ऐसी ही स्थिति टिके तो वह ब्रह्म-निर्वाण पाता है।

O Partha ! (Arjuna) This is the Brahmajnsthiti i.e., the state of attaining knowledge of Brahman by meditation. None, after attaining this state, gets deluded by mundane affairs or things. If one attains this state even when on his deathbed, he gets merged with Brahman.

(त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य)

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ 12 ॥

पुण्योग्मो (धर्मपद)

चन्दन या तगर, कमल या जड़ी, इन सभी की सुगन्धों से शील (सदाचार) की सुगन्ध उत्तम है।

अप्पमत्तो अयं गन्धो या यं तगरचन्दनी।

यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥ 13 ॥

तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अत्यमात्र है और जो यह शीलवानों की गन्ध है, वह उत्तम (गन्ध) देवताओं में फैलती है।

तेसं सम्पन्नसीलानां अप्पमादविहारिनः :

सम्पदञ्च विमुत्तानां मारो मग्नं न विन्दति ॥ 14 ॥

(धर्मपद)

जो वे शीलवान निरालस हो विरहने वाले, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गये हैं, उनके मार्ग को कामदेव मार नहीं पाता।

सीलंगन्धसमो गन्धो कुतो नाम भविष्यति।

यो समं अनुवाते च पदिवाचेत वायति ॥ 1 ॥

(बौद्ध सूक्त)

शील की गन्ध के समान दूसरी गन्ध कहाँ होगी ? जो कि हवा के बहने की ओर तथा उसके विपरीत उल्टी हवा की ओर भी एक समान बहती है।

सग्गारोहणसोपानं अज्जं सीलसमं कुतो ।

द्वारं वा पन निवान नगरस्स पवेसने ॥ 2 ॥

स्वर्गारोहण के लिए शील के समान दूसरी सीढ़ी कहाँ है ? और निर्वाण नगर में प्रवेश के लिए शील के समान दूसरा द्वार कहाँ है ?

शीलमास्थाय वर्तन्ते, सर्वा हि श्रेयसि क्रियाः।

स्थानाद्यानीव कार्याणि, प्रतिष्ठाय वसुन्धराम् ॥ 7 ॥

शील के आश्रय से सभी श्रेयस्कर कार्य सम्पन्न होते हैं, जैसे पृथ्वी के आधार से खड़ा होना आदि कार्य होते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र में भी ब्रह्मचर्य की भूरि भूरि प्रशंसा निम्न प्रकार से की गयी है –

ब्रह्मचर्यस्तेर्गम्यसुखनिस्पृहवेतसः ।
निद्रा संतोषप्रस्थ स्वं कालं नातिवर्तते ॥ 68 ॥

ब्रह्मचर्य में लगे हुए, संभोग सुख से विरक्त मन वाले एवं यथा लाभ से सन्तुष्ट व्यक्ति में नींद अपने ठीक समय का उल्लंघन नहीं करती अर्थात् इनको नींद ठीक समय पर स्वयं आ जाती है।

स्मृतिमेधाऽऽयुरारोग्यपुष्टीन्द्रिययशोबलैः ।
अधिका मन्दजरसो भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ 75 ॥

स्त्रियों के विषय में संयमी पुरुष, स्मृति, मेधा, आयु, आरोग्य, पुष्टि, इन्द्रियों की शक्ति, शुक्र, यश और बल में अधिक होते हैं तथा उनको देर में बुढ़ापा आता है। (अथाङ्गहदये सूत्रस्थानम्)

ब्रह्मचर्य के गुण

वर्णाधिक्यं निर्वलीकं शरीरं ।
सत्त्वोपेतं दीर्घमायुसुदृष्टिम् ।
कांतिं गात्राणां स्थैर्यमत्यन्तवीर्यम् ।
मर्त्यः प्राप्नोति स्त्रीषु नित्यं जितात्मा ॥ 1 ॥

जो स्त्रियों में नित्य विरक्त रहता है, उसके शरीर का वर्ण बढ़ता है। शरीर वलीक (चमड़े का सिकुड़ना) रहित होता है, मनोबल से युक्त होता है, दीर्घायु होता है एवं आँख अच्छी रहती है अर्थात् दृष्टि मंद नहीं होती है। शरीर में कांति एवं मजबूती आ जाती है और वह अत्यन्त शक्तिशाली होता है। (कल्याणकारक)

ब्रह्मचर्य की दृढ़ता

एक दिन न्याय, व्याकरण, काव्यादि समस्त शास्त्रों में प्रवीण सुदर्शन कुमार अपने जगन्मनोहारी स्वरूप से लोगों को मोहित करता हुआ अपने मित्रों सहित राजमार्ग पर से कहां जा रहा था कि इन्हें में सोलह शृंगार किये हुए और अनेक सखियों से घिरी हुई मनोरमा पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह जिन मन्दिर के दर्शनों को जा रही थी। उस अनुपम रूप को देखने से सुदर्शन कुमार कामबाण से विन्द्र

हो गया। अत्यन्त व्याकुल होकर घर आया और किसी से बिना कुछ कहे सुने शैव्या पर जा पड़ा। उसकी यह डशा देखकर उसके माता-पिता व्याकुल चिन हो गए और इसका कारण पूछा। परन्तु उससे संतोष जनक उत्तर नहीं मिला। बाद में सुदर्शन के मित्र क्रपिल भट्ट से पूछने पर पता चला कि कुमार मनोरमा पर आसक्त हो गया है। इसी कारण वह इतना बेचैन है। तब वृषभदास ने मनोरमा की चाचना के लिए सागरदत्त के यहाँ जाने का विचार किया।

उधर मनोरमा का भी उस दिन यहाँ हाल हो गया। वह भी सुदर्शन कुमार के स्वप्न-लावण्य को देखकर मूर्छित हो गई। सुदर्शन की विष्फळ रूपी अग्नि से जब उसका सारा शरीर उत्पन्न होने लगा, तब वह भी घर जाकर चिन्त को संभाल न सकने से शैव्या पर जा पड़ी। सखियों के द्वारा उसके माता-पिता भी पुत्री की अवस्था से परिचित होकर चिन्तित हुए और बहुत सोच-विचार के पश्चात् पिता सागरदत्त को स्वयं अपने घर आया हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और पूछा – हे महाभाष्य कैसे आना हुआ? सागरदत्त ने विनयपूर्वक कहा – मेरे पुत्र के साथ आप अपनी कुमारी का विवाह कर दीजिए। मैं इसी चाचना के लिए आया हूँ। वृषभदास ने हर्षित चिन्त होकर कहा – जो मैं चाहता था वही प्यारा विचार आपने भी प्रकट किया आपको धन्यवाद है। मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है। तत्पश्चात् दोनों सम्बन्धियों ने उसी समय श्रीधर नाम के ज्योतिषी को बुलाकर उसके द्वारा वैशाख शुक्ल पंचमी का शुभ मुहूर्त विवाह के लिए निश्चित करके नियत समय पर मनोरमा और सुदर्शन का मनोवाञ्छित विवाह कर दिया। अभूतपूर्व प्रेमसुख का अनुभव करते हुए वे दोनों काल यापन करने लगे और कुछ दिनों में उस प्रेम के फलस्वरूप सुकान्त नाम के पुत्र को पाकर वे धन्य भाग हुए।

एक दिन नाना देशों में विहार करते हुए समाधिगुप्त नाम के परम चति चम्पापुरी नगरी के बन में पधारे। बनमाली के द्वारा उनका आगमन सुनकर राजा, मंत्री एवं सम्पूर्ण श्रद्धालु लोग बन्दना करने गए। बन्दना और धर्म श्रवण के बाद वृषभदास सेठ ने सुदर्शन पुत्र को राजा की शरण में सौंपकर दीक्षा ले ली। और जिनमती सेठानी भी आर्यिका हो गई। पश्चात् कालांतर में दोनों समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर स्वर्गलोक को गए।

यहाँ सुदर्शन कुमार घर का मालिक होकर अपने पुत्र सुकान्त को नाना प्रकार की विद्या पढ़ाता हुआ सबका प्यारा होकर सुख से रहने लगा। एक समय

उसके रूप के अतिशय को सुनकर कपिलभट्ट की पत्नी कपिला आसक्त हुई और उससे मिलाप के लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन सुदर्शन को अपने घर के पास से जाते हुए देखकर पहचाना और अपनी सखी से कहा इसे किसी उपाय से छलकर मेरे पास ले आ। सखी जल्दी से उसके पास पहुँची और बोली है सुभग! आपके मित्र भारी विपत्ति में पड़े हुए हैं और आप उनकी खबर भी नहीं लेते। वह क्या बात है? सुदर्शन शेठ आश्चर्यचकित होकर कहते हैं—

कपिलभट्ट बीमार है! मुझसे तो किसी ने नहीं कहा। अन्यथा मैं आने से नहीं चूकता। ऐसा कहकर उसी के साथ भट्ट के घर में आये और पूछा कि मेरे मित्र कहाँ हैं? बतलाओ। सखी बोली वे अटारी पर पड़े हैं। आप अकेले वहाँ जाइए। भोले—भाले सुदर्शन सेठ अपने मित्रादि को नीचे बैठाकर आप अकेले ऊपर गए और वहाँ एक पलंग पर किसी को चादर ओढ़े हुए पड़े देखकर बिना जाने उस पर बैठ गए। चादर खींच कर बोले—तुझे क्या पीड़ा है मित्र? परन्तु वहाँ तो विचित्रता से कपटजाल ही बिछाया गया था। वहाँ कपिला ही पलंग पर पड़ी हुई थी। चादर खींचते ही इसने उनका वस्त्र पकड़ लिया और उसके हाथ अपने कुच—युगलों पर रखकर नम्रतापूर्वक कहा—प्यारे! मैं तुम्हारे संयोग के बिना अधर्मुई हो रही हूँ। तुम दयालु हो। कृपा करके प्रणय दान देकर मेरी रक्षा करो। नहीं तो मेरा जीना कठिन है। उस समय सुदर्शन सेठ अपने धर्म की रक्षा का कोई उपाय और न देखकर बोले—मैं तो नपुंसक हूँ केवल बाहर से देखने में रमणीक लगता हूँ, परन्तु मुझ में सार बिल्कुल नहीं है। यह सुनकर कपिला ने विरक्त होकर लाचार हो सेठ का वस्त्र छोड़ दिया और इस प्रकार इस दिन बड़ी कठिनता से अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करके सेठ जी घर आ गए और सुख से रहने लगे।

एक बार बसन्त के उत्सव में राजादिक सभी प्रतिष्ठित पुरुष बाहर बागों में क्रीड़ा करने गए और महारानी अभयमती भी अपनी कपिला सखी और समस्त अंतःपुरी की श्वियों सहित पुष्पक रथ पर बाग को चली। मार्ग में उन्होंने रथ पर बैठी हुई और गोद में सुकान्त पुत्र को लिये हुए मनोरमा को देखा और पूछा—यह किसकी भाग्यवान स्त्री है जिसकी गोद में बालक बैठा हुआ है। किसी ने कहा यह सुदर्शन सेठ की स्त्री है और सुकान्त कुमार की माता मनोरमा है। यह सुनकर अभयमती ने कहा—यह धन्य है जो इतने सुन्दर बालक की माता

हुई। परन्तु कपिला को इसमें बड़ा आश्चर्य हुआ। जी, “मगर मुझे तो किसी ने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है; तो फिर उसका यह पूत्र कहाँ से हो गया?” अभयमती ने कहा सुदर्शन सरीखे रूप सौभाग्यवाला पुण्यवान पुरुष को कहीं ऐसी लज्जाजनक व्याधि हो सकती है? कभी नहीं। तुझसे किसी दुष्ट ने ऐसा कह दिया होगा। इस पर कपिला ने नपुंसक कहने की सारी गुस्स कथा बतलायी। रानी ने कहा—वह ऐसा नहीं है। इस पर कपिला बोली अच्छा मैं ब्राह्मणी मूर्ख सही पर आप तो बड़ी पंडिता हैं। आपका जीवन भी मैं तब सफल समझूँ जब आप उससे संभोग कर लेवें अन्यथा व्यर्थ ही है। यह सुनकर रानी ने कहा—“इसके साथ सुख का अनुभव करूँगी तब ही जीऊँगी, अन्यथा प्राण छोड़ दूँगी।”

ऐसी प्रतिज्ञा करके उद्यान को गमन किया। वहाँ जल क्रीड़ा करने के बाद वह महलों में आकर व्याकुल चित्त होकर शश्या पर पड़ गयी। यह देखकर उसकी पंडिता धांये ने पूछा—बेटी तू आज इतनी व्याकुल और चिन्ता में क्यों है? अभयमती ने हृदय का सच्चा हाल कह सुनाया।

पंडिता ने कहा—पर तूने बुरा विचार किया क्योंकि सुदर्शन सेठ अखण्ड एक पत्नीवत को धारण करने वाला है। वह अपनी स्त्री के सिवाय अन्य किसी स्त्री की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। उनसे संभोग तो दूर उनकी वार्ता भी नहीं करता। इसके आलावा राजमहल के सातों दरवाजों पर पहरेदार भी निरंतर बैठे रहते हैं इसलिए किसी प्रकार से उनका उल्लंघन करके उसको यहाँ लाना भी दुर्घट है। और ऐसा करना अनुचित भी है। इसलिए तू इस व्यर्थ विचार को छोड़ दे। यह सुनकर अभयमती ने एक लस्ती आह खींचकर कहा—यदि उसका मिलन नहीं होगा तो क्या मेरा मरण भी न हो सकेगा? अर्थात् यदि उससे मिलाप नहीं होगा तो मैं जीती नहीं रहूँगी। रानी का इस प्रकार बड़ा भारी हठ देखकर पंडिता ने पीछे से कुछ सोचकर दिलासा दी कि मैं कुछ उपाय करती हूँ। ऐसा कहकर वह एक सुन्दर कुम्हार के घर गई और उससे मिट्टी के सात पुतले बनवाए। इसके बाद प्रतिपदा की रात्रि को उनमें एक पुतला कंधे पर रखकर रानी के महल को चली, परन्तु द्वार पर पहुँचते ही द्वारपाल ने उसे रोका तब पंडिता ने पूछा—क्या मुझे भी महारानी के महल में जाने की मनाही है? द्वारपाल ने कहा, हाँ इतनी रात्रि को सभी के जाने की मनाही है। इस समय कोई प्रवेश नहीं कर सकता। पंडिता यह सुनकर भी नहीं मानी और जबरदस्ती जाने लगी, तब द्वारपाल

ने उसे धक्का डेकर बाहर करना चाहा। परन्तु वह धक्का लगते ही पुतले सहित गिर पड़ी और हाय! हाय! करके बोली आज महारानी का उपवास है। वे इस पिट्ठी के बने कामदेव की पूजा करके सात्रि जागरण करेंगी और उसे तूने पटककर तोड़ डाला! अब देखना प्रातःकाल तेरी कैसी दुर्दशा करती हैं। तेरा सकुम्भ नाश कराऊंगी।

वे बातें सुनकर बेचास छारपाल भयभीत होकर उसके पाँव पर गिर गया और गिड़गिड़ा कर बोला—आज तो क्षमा कर दो आगे से तुझसे छेड़शाड़ नहीं करूँगा। वह सुनकर पंडिता अपने घर गई और दूसरे दिन दूसरा पुतला लेकर रात्रि को दूसरे दरवाजे पर आई और वहाँ भी उसी प्रकार ढोंग कर बहाँ के छारपाल को भी वश में कर लिया। इस प्रकार सातों छारपाल को अपना चेला बनाकर पंडिता आँठवें दिन अपना मतलब सिद्ध करने चली।

उस दिन सुदर्शन सेठ का अष्टमी का उपवास था, अतः वे सूर्यास्त के समय श्मशान भूमि में जाकर प्रतिमायोग धारण किये हुये विसर्जनान थे। पंडिता ने रात्रि को वहाँ जाकर कहा—सेठ जी आप धन्य हो जो आप पर महारानी अभयमती आसक्त हैं। आप मेरे साथ इसी समय चलें और राजमहल में उनके साथ दिव्य भोगों का अनुभव करें। संसार में भोगानुभव ही सार है। यह यौवन की बहार सदा नहीं रहती। यहाँ श्मशान में बैठकर शरीर-शोषण करने से क्या लाभ होगा? ऐसे नाना प्रकार के वचनों से उसने सेठ जी का चित्त चलायमान करना चाहा। परन्तु जब वे धीर-धीर मेरु के सम्मोन सर्वथा अचल रहे तो चाण्डाली पंडिता ने उन्हें उठाकर कन्धे पर रख लिया। और राजमहल के द्वारों का उल्लंघन करके अभयमती की सेज पर ला कर रख दिया। द्वारपालों ने यह समझा कि आज भी यह किसी पुतले को लिये जाती है, इसलिये चूँ भी नहीं की।

अभयमती ने अपनी शय्या पर अपने अभीष्ट (जिसकी इच्छा थी) उस पुरुष को पाकर उसके साथ काम-विकारों की स्वी-सुलभ नाना चेष्टायें कीं, परन्तु परम इन्द्रियजित् सुदर्शन मेहन् के समान तनिक भी विचलित नहीं हुए। तब अभयमती ने खिंच और विरक्त होकर पंडिता से कहा—इसे वहाँ श्मशान में छोड़ आ। पंडिता ने झारोखों में से बाहर देखकर कहा कि सबेरा हो गया है, अब इसे वहाँ कैसे ले जाऊँ? क्या करूँ? बड़ी कठिनता उपस्थित है। अभयमती ने देखा कि, अब कोई उपाय नहीं सूझता। तब सुदर्शन को वहाँ शय्या के निकट कायोत्सर्ग

खड़ा करके उसने स्वयं नोचकर अपने शरीर में बहुत से नखों के चिह्न कर लिये और ऊँचे स्वर से पुकार-पुकार कर रोना शुरू किया। हाय! हाय! मुझ शीलवतों का शरीर इस पापी ने विध्वंस कर दिया। हाय अब मैं क्या करूँ? यह सुनकर किसी ने जाकर राजा से कह दिया—महाराज! सुदर्शन सेठ ने रानी के मतल में बड़ा अत्याचार किया है। सुनते ही राजा क्रोध से मतवाला हो गया और उसने बिना सोचे समझे ही सेवकों को आज्ञा दे दी कि उस दुष्ट को शमशान भूमि में ले जाकर मार डालो। आज्ञानुसार सेवक निरापराधी सेठ की चोटी पकड़ कर शमशान में ले गये और वहाँ उन्हें तलवारों से मारने लगे, परन्तु ज्यों ही तलवार उनके कण्ठ पर पड़ी कि वे फूलों की माला हो गई। इस पर दूसरों ने और भी हथियार चलाये, परन्तु वे भी जिन धर्म और ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से पुष्पादिक रूप हो गये। साथु पुरुष पर उपसर्ग होता हुआ जानकर एक वक्ष ने उसी समय वहाँ प्रकट होकर प्रहार करते हुए राजा के नौकरों को जहाँ का तहाँ कील दिया। राजा नौकरों का यह हाल सुन और भी कुछ हुआ। उसने जाना कि सुदर्शन ने ही अपने मन्त्र के प्रभाव से यह सब किया है, अतः और भी अनेक सेवकों को मारने के लिये भेजा। परन्तु उनकी भी वही दशा हुई अर्थात् वे भी कील दिये गये। तब राजा स्वयं बड़ी भारी सेना लेकर सुदर्शन को मारने चला।

उधर—यक्ष ने भी अपनी माया से चतुरुंग सेना तैयार कर ली और दोनों ओर के योद्धा रण के मैदान में व्यूह-प्रतिव्यूह के क्रम से आ खड़े हुए। दोनों सेनाओं में संसार को चमत्कृत करने वाला घनघोर युद्ध होने लगा। बहुत समय बाद जब दोनों हाथी पर चढ़ सम्मुख हुए तब देव ने कहा—राजन अब तू मत मर। मैं देव हूँ। मुझ पर तू विजय नहीं पा सकेगा। अभी भी समझ जा और सुदर्शन की चिन्ता को छोड़ दे। तू उस धर्मात्मा को दुःख न दे सकेगा? इसलिये अपने स्थान पर जा और सुख से राज्य कर। राजा ने उस पर गरज कर कहा—यदि तू देव है तो क्या हुआ? देव क्या राजाओं के किंकर नहीं होते हैं? युद्ध कर फिर, दिखाता हूँ तुझे अपनी भुजाओं का पराक्रम? इस तरह दोनों का वचन-युद्ध के बाद शस्त्र-युद्ध हुआ। राजा ने बड़े वेग से बाणों की बौछार शुरू कर दी और यक्ष के हाथी को छिप कर दिया। तब यक्ष दूसरे हाथी पर चढ़कर पुनः युद्ध करने लगा। इस बार हाथी धराशायी हुआ, वह भी दूसरे हाथी पर चढ़ कर फिर लड़ने लगा। फिर यक्ष ने राजाकी ध्वजा तथा क्षत्र को छेदकर हाथी

को प्राण रहित कर दिया। वह रथ पर आरुद्ध होकर सम्मुख हुआ। वह देख यक्ष भी हाथी छोड़ रथ पर चढ़ा। विद्यामयी व्याणों से दोनों में तीनों लोकों को अचंभित करने वाला घनघोर युद्ध हुआ। बाट में राजा ने यक्ष को रथ से गिरा कर मार डाला, परन्तु देखता है यक्ष मर कर एक के दो हो गए। उन्हें मारा तो चार हो गए। इस प्रकार ढूने होते-होते सारी रण भूमि भर गई। तब राजा इस माया से डरकर भागने की सोचने लगा, परन्तु भाग नहीं सका। यक्ष पीछे लग गया। उसने कहा, तू भाग कर जाएगा कहाँ? आज यदि तू सुदर्शन सेठ की शरण में जाएगा तो जीवित रह सकता है। तब राजा दूसरे उपाय न देखकर सेठ जी की शरण में आया और बोला— सेठ जी! मेरी रक्षा करो! रक्षा करो! तब सेठ ने हाथ उठाकर यक्ष को रोका और पूछा आप कौन हैं जो हमारे महाराज को कष्ट दे रहे हैं? यक्ष ने सेठ जी को प्रणाम किया और अपना स्वरूप और आने का कारण बताया। तत् पश्चात् राजा को अभयमती की कुटिलता का वृत्तान्त कहकर उसकी सम्पूर्ण सेना को जीवित किया और अन्त में सेठ जी को पुनः नमस्कार करके तथा ऊपर पुष्पवृष्टि करके वह स्वर्ग शोक को चला गया। उधर जब अभयमती ने जाना कि मेरा भण्डाफोड़ हो गया है तब वृक्ष से एक कपड़ा बाँधकर फाँसी लगाकर मर गई और पटना नगर में जाकर व्यन्तरी हुई। उधर पण्डिता ने जब देखा कि रानी की बुरी दुर्दशा हो गई और अब मेरी बारी आई है, तब वह वहाँ से भागकर उसी पाटलीपुत्र नगर में देवदत्ता नाम की वेश्या के घर जा पहुँची और उससे अपनी पूर्व की सब कथा कह सुनायी। देवदत्ता ने उसे सुनकर कपिला और अभयमती की खूब हँसी की और खयं प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सुदर्शन सेठ को देख पाऊँ और उसी समय रूप को नष्ट न कर डालूँ तो मेरा नाम देवदत्ता नहीं।

वहाँ राजा ने सुदर्शन सेठ से नम्र होकर कहा कि अज्ञानता से मैंने जो आपका अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिए और मैं अपना आधा राज्य आपको समर्पण करता हूँ उसे ग्रहण कीजिये। इसके उत्तर में सेठ ने कोमल वचनों से कहा— इसमें आपका कोई अपराध नहीं है, मेरे पूर्व कृत कर्मों का फल मुझे मिला है और आप जो कृपा करके आधा राज्य मुझे देते हैं वह भी मैं ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि जिस समय मुझे आपकी महारानी ने शमर्णान से उठाकर मंगवाया था, उस समय मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि उस उपर्युक्त के पश्चात्

जीवित रहूँगा तो पाणीपात्र में ही भोजन करूँगा, अर्थात् दिग्म्बर मुनि हो जाऊँगा। यह सुनकर भी महाराज ने बहुत आग्रह किया परन्तु दृढ़व्रती सुदर्शन ने संसार में रहना स्वीकार न किया। पश्चात् मनोरमातिक सम्पूर्ण कुटुम्ब को छोड़कर और राजादि कों में क्षमा कराकर वह वहाँ ही दीक्षित हो गया। यह देखकर राजा को बड़ा बैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिये वह अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर और सुदर्शन सेठ के सुकान्त पुत्र को राज्यश्रेष्ठी का पद देकर सुदर्शन के साथ ही दीक्षित हो गया। तत्पश्चात् उनके अन्तःपुर की बहुतसी रानियों ने भी आर्यका के व्रत धारण किये।

सम्पूर्ण मुनियों ने उसी नगर में पारणा किया। इसके पश्चात् गुरुवर्य के साथ नाना स्थानों में विहार करते हुवे सुदर्शन मुनि ने सम्पूर्ण आगमों का ज्ञान लाभ कर लिया और इसके पश्चात् गुरु की आज्ञापूर्वक एकाकी विहार करना प्रारम्भ किया। नाना तीर्थ स्थानों की बन्दना करके एक बार वे चर्या के लिए पाटलीपुत्र नगर में गये। वहाँ अचानक पापिनी पंडिता ने देखकर उन्हें पहचान लिया और देवदत्ता से आकर कहा कि जिसकी कथा मैंने तुमसे कही थी वह सुदर्शन मुनि यहाँ आ रहा है। अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का समरण करके धोखा देकर मुनि को भोजन करने के लिए उसने आह्वान किया। निष्कपट मुनि उस पापिनी के जाल को नहीं समझ सके और आहार के लिये ठहर गये। देवदत्ता ने उन्हें ले जाकर हटात् शब्दा पर पकड़कर बैठा लिया और वेश्या सुलभ सैंकड़ों चाटुक वचन कहना प्रारम्भ किया— प्यारे, तुम अभी तक परम योग्य अवस्था को धारण किये हुये हो। अभी यह तपस्या तुम्हारे योग्य नहीं है। मेरे पास अटूट धन है। मेरे साथ कुछ रमण करके उसे भोगो और मेरी इच्छा को पूर्ण करो।

वेश्या का यह प्रलाप सुनकर परम निश्चल और धीर बीर सुदर्शन मुनि बोले हैं मुरादे! (मूर्खिणी) यह अपवित्र शरीर दुःखों का घर, वात, पित्त, कफ इन त्रिदोषों से पंडित, कृमिकूल से परिपूर्ण और विनश्वर है। यह सांसारिक भोगोपभोगों के अनुभवन करने के लिए नहीं है किन्तु परलोक सिद्धि की सहायता के लिये है। अतएव इसे तपस्या में ही लगाना चाहिये। ये सम्पूर्ण भोगोपभोग अविचारणीय और दुःखात्म हैं। इनसे प्राणी को कभी सन्तोष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। मोक्ष के अतिरिक्त अन्यत्र सुख नहीं है और वह तपस्या के विना प्राप्त नहीं हो सकता। सो हे मूर्खे! अब तू इस दुष्कृत्य से अपने को बचा और

कुछ अपना कल्पाण कर। यह सुन देवदत्ता ने यह कहकर कि “यह सब पीछे करना और पीछे ही उपदेश देना, अभी वह समय नहीं है” सुदर्शन मुनि को अपनी सुकोमल शश्या पर लिटा दिया। परन्तु मुनि ने उस समय सन्यास धारण कर लिया और प्रतिज्ञा कर ली कि यह इस उपसर्ग का निवारण हो जायेंगा तो आहारादि ग्रहण करूँगा, अन्यथा सर्वकथा त्याग है। और नगरी में भी प्रवेश करने की भी प्रतिज्ञा ले ली। परन्तु वेश्या ने उनका पिण्ड न छोड़ा। उसने तीन दिन तक काम विकारों की नाना चेष्टायें की, परन्तु जगज्जयी काम को जीतने वाले सुदर्शन मुनि मेरु के समान सर्वथा निश्चल रहे। आखिर वेश्या लाचार और निरुपाय होकर रात्रि को उन्हें शमशान भूमि में ले जाकर कायोत्सर्गपूर्वक स्थापन कर अपने घर चली आई।

इतने में वह व्यन्तरी जो पूर्व के जन्म में अभ्यमती थी, वहाँ से कहीं जा रही थी। सो मुनि के ऊपर विमान अटकने से नीचे उतरी और सुदर्शन को पहचान कर बोली— रे सुदर्शन ! तेरे प्रेम में फँसकर और तज्जनित आर्तध्यान से मरकर मैंने यह व्यन्तर पर्याय पायी है। उस समय तो तू किसी देव की सहायता से बच गया था, परन्तु बतला, इस समय यहाँ तेरी रक्षा करने वाला कौन है ? यह कहकर नाना प्रकार के उपसर्ग करने लगी। तब मुनिराज के पुण्य प्रभाव से उसी यक्ष ने आकर रक्षा की। व्यन्तरी के साथ यक्ष का सात दिन तक घोर युद्ध हुआ और आखिरी व्यन्तरी हारकर पलायन कर गयी।

यहाँ सुदर्शन मुनि कठिन तपस्या के फल से केवलज्ञान प्राप्त करके गंधकुटी रूप समवसरणादि की विभूति से युक्त हुए। उनके केवलज्ञान के अतिशय को देखकर व्यन्तरी सम्यग्दृष्टि हो गयी और पंडितों तथा देवदत्ता ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। उधर मनोरमा, सुदर्शन केवली को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सुनकर वन्दना को आयी और पुत्रादिक के मोह को छोड़कर वह भी वन्दना पूर्वक आर्थिका हो गयी। उसके साथ और भी अनेक पुरुष और मित्रायाँ दीक्षित हुईं। पश्चात् सुदर्शन मुनि भव्यजनों के पुण्य की प्रेरणा से कुछ काल विहार करके पौष शुक्ल पंचमी को मोक्ष पथारे।

धारीवाहनादि राजा जो मुनि हो गये थे, उनमें से अनेक सौधर्म स्वर्ग को गये, अनेक ईशान को इस प्रकार सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त गये। आर्थिकायें भी सौधर्म, अच्युतादि कल्प स्वर्गों में देव और कोई—कोई देवी अपनी—अपनी तपस्या और

परिणामों की उन्नतता के अनुसार हुयी। (सागरधर्मामृतम्)

शील का महात्म्य

संसार में अंगदेश बहुत प्रसिद्ध है। जिस समय की हम कथा लिखते हैं, उस समय उसकी प्रधान राजधानी चम्पापुरी थी। उसके राजा थे वसुवर्धन और उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। वह सती थी, गुणवती थी और बड़ी सरल स्वभाव की थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था प्रियदत्त। प्रियदत्त की जिन धर्म पर पूर्ण ऋद्धा थी। उसका गृहिणी का नाम अंगवती था। वह बड़ी धर्मात्मा थी, उदार थी। अंगवती को एक पुत्री थी उसका नाम अनन्तमती था। वह बहुत सुन्दर थी एवं गुणों की समुद्र थी।

अश्वाहिका पर्व आया। प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति मुनिराज के पास आठ दिन के लिए ब्रह्माचर्य व्रत लिया। साथ ही मैं अपनी प्रिय पुत्री को भी विनोदवश ब्रह्माचर्य व्रत दे दिया। कभी—कभी सत्यरुपों का विनोद भी सत्य मार्ग का प्रदर्शक बन जाता है। अनन्तमती के चित्त पर भी प्रियदत्त के दिलाये व्रत का एक ऐसा ही प्रभाव पड़ा। जब अनन्तमती के अपने ब्याह का समय आया और उसके लिए आयोजन होने लगा तब अनन्तमती ने अपने पिता से कहा—पिताजी ! आपने मुझे ब्रह्माचर्य व्रत दिलाया था न ? फिर यह ब्याह का आयोजन आप किस लिए करते हैं ?

उत्तर में प्रियदत्त ने कहा —पुत्री, मैंने तो तुझे जो व्रत दिलाया था वह मेरा विनोद था। क्या तुम उसे सच समझ बैठी ? अनन्तमती बोली— पिताजी ! धर्म और व्रत में हंसी विनोद कैसा ? यह मैं नहीं समझी।

प्रियदत्त ने फिर कहा — मेरे कुल की प्रकाशक प्यारी पुत्री, मैंने तो तुझे ब्रह्माचर्य व्रत केवल विनोद से दिलाया था। और तू उसे सच ही समझ बैठी है, तो भी वह आठ ही दिन के लिए था। फिर अब तू ब्याह के लिए क्यों इनकार करती है ? अनन्तमती विभिन्न तर्क से विवाद नहीं करने को कहा।

अनन्तमती की बातों से उसके पिता को बड़ी निराशा हुई, पर वे कर क्या सकते थे ? उन्हें अपना सब आयोजन समेट लेना पड़ा। इसके बाद अनन्तमती के जीवन को धार्मिक जीवन बनाने के लिए उसके पठन—प्रच्छा प्रबन्ध कर दिया। अनन्तमती भी निराकुलता से शास्त्रों का अभ्यास करन लगी।

इस समय अनन्तमती पूर्ण युवती है। उसकी सुन्दरता ने स्वर्गीय सुन्दरता

धारण की है उसके अंग-अंग से लावण्य मुखा का झरना बह रहा है। चन्द्रमा उसके अप्रतिम मुख की शोभा को देखकर फीका पड़ रहा है और नखों के प्रतिविम्ब के बहाने से उसके पाँवों में पड़कर अपनी इन्जत बच्चा लेने के लिए उससे प्रार्थना करता है। उसकी बड़ी-बड़ी और प्रफुल्लित आँखों को देखकर बेचारे कमलों से मुख भी ऊँचा नहीं किया जाता है। यदि सच पृथग् तो उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करना मानो उसकी मर्यादा बाँध देना है, पर वह तो अमर्यादित है, स्वर्ग की सुन्दरियों को भी दुर्लभ है।

चैत्र का महीना था। एक दिन अनन्तमती विनोदवश अपने बगीचे में अकेली झूले पर झूल रही थी। इसी समय एक कुण्डलमण्डित नाम का विद्याधरों का राजा, जो कि विद्याधरों की दक्षिण श्रेणी के किन्नपुर का स्वामी था। इधर ही होकर अपनी प्रिया के साथ वायुयान में बैठा हुआ जा रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि झूलती हुई अनन्तमती पर पड़ी। उसकी स्वर्णीय सुन्दरता को देखकर कुण्डलमण्डित काम के बाणों से बुरी तरह बिंध गया। उसने अनन्तमती की प्राप्ति के बिना अपने जन्म को व्यर्थ समझा। वह उस बेचारी बालिका को उड़ाकर तो उसी वक्त ले जाता पर साथ में प्रिया के होने से ऐसा अनर्थ करने के लिए उसकी हिम्मत न पड़ी। पर उसे बिना अनन्तमती के कब चैन पड़ सकता था? इसलिए वह अपने विमान को शीघ्रता से घर लौटा ले गया और वहाँ अपनी प्रिया को छोड़कर उसी समय अनन्तमती के बगीचे में आ उपस्थित हुआ और बड़ी फुर्ती से उस भोली बालिका को उठा ले चला। उधर उसकी प्रिया को भी उसके कर्म का कुछ अनुसंधान लग गया था। कुण्डलमण्डित तो उसे घर पर छोड़ आया था, पर वह घर पर न ठहरकर उसके पीछे-पीछे हो चली। जिस समय कुण्डलमण्डित अनन्तमती को लेकर आकाश की ओर जा रहा था, उसकी दृष्टि अपनी प्रिया पर पड़ी। उसे क्रोध के मारे लाल मुख किये हुई देखकर कुण्डलमण्डित के प्राणदेवता एक साथ शीतल पड़ गये। उसके शरीर को काटो तो खून नहीं। ऐसी स्थिति में अधिक गोलमाल होने के भय से उसने बड़ी फुर्ती के साथ अनन्तमती को एक पर्णलघ्वी नाम की विद्या के अधीन कर उसे एक भयंकर वन में छोड़ देने की आज्ञा दे दी और आप पत्नी के साथ घर लौट गया और उसके सामने अपनी निर्दोषता का प्रमाण पेश कर दिया कि अनन्तमती न तो विमान में उसे देखने को मिली और न विद्या के सुपुर्द करते समय कुण्डलमण्डित ने ही उसे देखा।

उस भयंकर वन में अनन्तमती बड़ी जोर-जोर से रोने लगी, पर उसके रोने को सुनता भी कौन? वह तो कोसों तक मनुष्यों के पदचार से रहित थी। कुछ समय बाद एक भीलों का राजा शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला। उसने अनन्तमती को देखा देखते ही वह भी काम के बाणों से घायल हो गया और उसी समय उसे उठाकर अपने गाँव में ले गया। अनन्तमती तो यह समझी कि दैव ने मुझे इसके हाथ सौंपकर मेरी रक्षा की है और अब मैं अपने घर पहुँचा दी जाऊँगी, पर नहीं। उसकी यह समझ ठीक नहीं थी, वह छुटकारे के स्थान में एक और नई विपत्ति के मुख में फँस गई।

राजा उसे अपने महल में ले जाकर बोला—बाले! आज तुम्हें अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि एक राजा तुम पर मुग्ध है और वह तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाना चाहता है। प्रसन्न होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करो और अपने स्वर्णीय समागम से उसे सुखी करो। वह तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा है। तुम्हें बनदेवी समझकर अपना मनचाहा वर माँगता है। उसे देकर उसकी आशा पुरी करो। बेचारी भोली अनन्तमती उस पापी की बातों का क्या जवाब देती? वह फूट-फूटकर रोने लगी और आकाश-पाताल एक करने लगी। पर उसकी सुनता कौन? वह तो राज्य ही मनुष्य जाति के राक्षसों का था।

भील राजा के निर्दर्शी हृदय में तब भी अनन्तमती के लिए कुछ भी दया नहीं आयी। उसने और भी बहुत—बहुत प्रार्थना की। विनय अनुनय किया, भय दिखाया पर अनन्तमती ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया किन्तु कुछ सोचकर उसने उसे फटकारना शुरू किया। उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगी, उसका चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया। सब कुछ हुआ, पर उस भील राक्षस पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसने अनन्तमती से बलात्कार करना चाहा। इतने में उसके पुण्य प्रभाव से नहीं, शील के अखण्ड बल से बनदेवी ने आकर अनन्तमती की रक्षा की और उस पापी को उसके पाप का खूब फल दिया और कहा—नीच, तू नहीं जानता यह कौन है? याद रख यह संसार की पूज्य एक महादेवी है, जो इसे तूने सताया तो समझ तेरे जीवन की कुशलता नहीं है। यह कहकर वन देवी अपने स्थान पर चली गई। उसके कहने का भीलराज पर बहुत असर पड़ा और पड़ना भी चाहिए था, क्योंकि थी तो वह देवी ही न? देवी के डर के मारे दिन निकलते ही उसने अनन्तमती को एक साहकार के हाथ में

सौंपकर उससे कह दिया कि इसे उसके घर पहुँचा दीजिएगा। पुष्पक सेठ ने उस समय तो अनन्तमती को उसके घर पहुँचा देने का इकरार कर भीलराज से उसे ले लिया, पर यह किसने जाना कि उसका हृदय भी भीतर से पापपूर्ण होगा। अनन्तमती को पाकर वह समझने लगा कि मेरे हाथ अनायास स्वर्ग की सुन्दरी लग गई। यह यदि मेरी बात प्रसन्नता पूर्वक मान ले तब तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे पंजे से छूटकर भी तो यह नहीं जा सकती। चह विचार कर उस पापी ने अनन्तमती से कहा—सुन्दरी, तुम बड़ी भाग्यवती हो जो एक नर-पिशाच के हाथ से छूट कर पुण्यपुरुष के सुपुर्द हुई। कहाँ तो यह तुम्हारी अनिन्द्य स्वर्गीय सुन्दरता और कहाँ वह भील राक्षस, कि जिसे देखते ही हृदय काँप उठता है? तो आज अपने को देवों से भी कहीं बढ़कर भाग्यशाली समझता हूँ जो मुझे अनमोल स्त्री रत्न सुलभता के साथ प्राप्त हुआ। भला, बिना महाभाग्य के कहीं ऐसा रत्न मिल सकता है? सुन्दरी! देखती हो, मेरे पास अटूट धन है, अनन्त वैभव है, उस सबको तुम पर न्यौछावर करने को तैयार हूँ और तुम्हारे चरणों का अत्यन्त दास बनता हूँ। कहो, मुझ पर प्रसन्न हो? मुझे अपने हृदय में जगह देगी न? और मेरे जीवन को, मेरे धन-वैभव को सफल करो।

अनन्तमती ने समझा था कि उस भले मानस की कृपा से सुखपूर्वक पिताजी के पास पहुँच जाऊँगी, पर वह बेचारी पापियों के पापी हृदय की बात को क्या जाने? उसे जो मिलता था, उसे वह भला ही समझती थी। यह स्वाभाविक बात है कि अच्छे को संसार अच्छा ही दिखता है। अनन्तमती ने पुष्पक सेठ की पापपूर्ण बातें सुनकर बड़े कोमल शब्दों में कहा—महाशय, आपको देखकर तो मुझे विश्वास हुआ था कि अब मेरे लिए कोई डर की बात नहीं रही, मैं निर्विज्ञ अपने घर पहुँच जाऊँगी, क्योंकि मेरे एक दूसरे पिता मेरी रक्षा के लिये आ गये हैं। पर मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आप सरीखे भले मानस के मुँह से ऐसी नीच बातें? क्यां यह बाहरी चमक-दमक और सीधापर केवल द्राम्भिकपना है। जिसे मैंने रस्सी समझकर हाथ में लिया था, मैं नहीं समझती थी कि इतना भयंकर सर्प होगा? केवल बगुलों की हँसों में गणना करने के लिए है? यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें, तुम्हारे उस ठगी वेष को, तुम्हारे कुल को, तुम्हारे धन-वैभव को और तुम्हारे जीवन को धिक्कार देती हूँ—अत्यन्त धृणा की दृष्टि से देखती हूँ। जो मनुष्य केवल संसार को ठगने के लिए ऐसे मायाजाल में फँसता

है, वह मनुष्य नहीं है, किन्तु पशु है, पिशाच है, राक्षस है। वह पापी मुँह देखने के योग्य नहीं है, नाम लेने योग्य नहीं है। उसे जितना धिक्कार दिया जाये थोड़ा है। मैं नहीं जानती थी कि आप भी उन्हीं पुरुषों में से एक होंगे। अनन्तमती और भी कहती, पर वह ऐसी कुल कलंक नीचों के मुँह लगना उचित नहीं समझ चुप हो गई। अपने क्रोध को वह दबा गयी।

उसकी जली-भुनी बातें सुनकर पुष्पक सेठ की अकल ठिकाने आ गई। वह जलकर खाक हो गया, क्रोध से उसका सारा शरीर काँप उठा, पर तब भी अनन्तमती के दिव्य तेज के सामने उससे कुछ करते नहीं बना। उसने उसके क्रोध का बदला अनन्तमती से इस रूप में चुकाया कि उसने उसे अपने शहर में ले जाकर एक कामसेना नाम की कुट्टिनी के हाथ सौंप दिया। सच तो यह है कि यह सब दोष दिया किसे जा सकता है? कर्मों की ही ऐसी विचित्र रित्थि है, जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है, इसमें नई बात कुछ नहीं है।

कामसेना ने भी अनन्तमती को कष्ट देने में कुछ कसर नहीं रखी। जितना उससे बना भय से, लोभ से उसे पवित्रता से गिराना चाहा— उसके सतीत्व धर्म को भ्रष्ट करना चाहा, पर अनन्तमती उससे नहीं डिगी। वह सुमेरु के समान निश्चल बनी रही। ठीक तो है— जो संसार के दुःखों से डरते हैं वे ऐसे भी सांसारिक कामों के करने से घबरा उठते हैं जो न्याय मार्ग से भी क्यों न प्राप्त हुए हों, तब भला उन पुरुषों की ऐसा धृणित और पापकार्यों में कैसे प्रीति हो सकती है? कभी नहीं होती।

कामसेना ने उस पर अपना चक्र चलता न देखकर उसे एक सिंहराज नाम के राजा को सौंप दिया। बेचारी अनन्तमती का जन्म ही न जाने कैसे बुरे समय में हुआ था, जो वह जहाँ पहुँचती थीं आपत्ति उसके सिर पर सवार रहती। सिंहराज भी एक ऐसा ही पापी राजा था। वह अनन्तमती के देवांगना दुर्लभ रूप को देखकर उस पर मोहित हो गया। उसने भी उससे बहुत हाथ जोड़े, पर अनन्तमती ने उसकी बातों पर कुछ ध्यान न देकर उसे भी फटकार डाला। पापी सिंहराज ने अनन्तमती का अभिमान नष्ट करने को उससे बलात्कार करना चाहा। पर जो अभिमान मानवी प्रकृति का न होकर अपने पवित्र आत्मीय तेज का होता है, भला किसकी मजाल जो उसे नष्ट कर सके? जैसे ही पापी सिंहराज ने उस तेजोमय

मृति की ओर पाँव बढ़ाया कि उस वनदेवी ने जिसने एक बार पहले भी अनन्तमती की रक्षा की थी। उपरिथत होकर कहा - खबरदार! उस सती देवी का स्पर्श भूलकर भी मत करना। नहीं तो समझ लेना कि तेरा जीवन जैसे संसार में था ही नहीं इसके साथ ही देवी उसे उसके पापों का द्वचित दण्ड देकर अन्तर्निर्हित हो गई। देवी को देखते ही सिंहराज का कलेजा काँप उठा। वह चित्रलिखित-सा निश्चेष्ट हो गया। देवी के चले जाने पर उसे बहुत देर के बाद होश आया। उसने उसी समय नौकरों को बुलावाकर अनन्तमती को जंगल में छोड़ आने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा का पालन हुआ। अनन्तमती एक भयंकर वन में छोड़ दी गई।

अनन्तमती कहाँ जायेगी, किस दिशा में उसका शहर है और वह कितनी दूर है। इन सब बातों का व्यापि उसे कुछ पता नहीं था, तब भी वह पंचपरमेश्वी का स्मरण कर वहाँ से आगे बढ़ी और फल फूलादि से अपना निर्वाह कर वन, जंगल, पर्वतों को लाँघती हुई अयोध्या में पहुँच गई। वहाँ उसे एक पट्टमत्री नाम की आर्यिका के दर्शन हुए। आर्यिका ने अनन्तमती से उसका परिचय पूछा। उसने अपना सब परिचय देकर अपने घर, जो-जो विपत्ति आयी थी और उससे जिस-जिस प्रकार अपनी रक्षा हुई थी उसका सब हाल आर्यिका को सुना दिया। आर्यिका उसकी कथा सुनकर बहुत दुःखी हुई। उसे उसने एक सती-शिरोमणि रमणी रत्न समझकर अपने पास रख लिया। सच है, सज्जनों का ब्रत परोपकारार्थ ही होता है।

उधर प्रियदत्त को जब अनन्तमती के हरे जाने का समाचार मालूम हुआ तब वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसके वियोग से वह अस्थिर हो उठा। उसे घर शमशान सरीखा भयंकर दीखने लगा। संसार उसके लिये सूना हो गया। पुत्री के विरह से दुःखी होकर तीर्थ यात्रा के बहाने से वह घर से निकल पड़ा। उसे लोगों ने बहुत समझाया, पर उसने किसी की बात को न मानकर अपने निश्चय को नहीं छोड़ा। कुटुम्ब के लोग उसे घर पर न रहते देखकर स्वयं भी उसके साथ-साथ चले। बहुत से सिन्धु क्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रों की यात्रा करते करते वे अयोध्या में आये। वहीं पर प्रियदत्त का साला, जिनदत्त रहता था। प्रियदत्त उसी के घर पर ठहरा। जिनदत्त ने बड़े आदर सम्मान के साथ अपने बहनों की पाहुनागति की। उसके बाद स्वरथता के समय जिनदत्त ने अपनी बहिन आदि का समाचार पूछा। प्रियदत्त ने जैसी घटना बीती थी, वह सब उससे कह सुनाई। सुनकर जिनदत्त को भी अपनी भानजी के बाबत बहुत दुःख हुआ। दुःख सभी

को हुआ, पर उसे दूर करने के लिये सब लाचार थे। कर्मों की विचरिता देखकर सब ही को संतोष करना पड़ा।

इसरे दिन प्रातःकाल उठकर और स्नानादि करके जिनदत्त ने जिनमन्दिर चला गया। इधर उसकी स्त्री भोजन की तैयारी करके, पढ़मध्या आर्यिका के पास जो बालिका थी, उसे भोजन करने को और आँगन में चौक पूरने को बुला लाई। बालिका ने आकर चौक पूरा और बाड़ में भोजन करके वह अपने स्थान पर लौट आयी।

जिनदत्त के साथ प्रियदत्त भी भगवान की पृजा करके घर पर आया। आते ही उसकी दृष्टि चौक पर पड़ी। देखते ही उसे अनन्तमती की बाड़ आ गई। वह रो पड़ा। पुत्री के प्रेम से उसका हृदय व्याकुल हो गया। उसने रोते-रोते कहा-जिसने वह चौक पूरा है, क्या मुझ अभागे को उसके दर्शन होंगे? जिनदत्त अपनी स्त्री से उस बालिका का पता पृछ कर जहाँ वह थी, वहाँ दौड़ गया और झट उसे अपने घर लिवा लाया। बालिका को देखते ही प्रियदत्त के नेत्रों से आँसू बह निकले। उसका गला भर आयो। आज वर्षों बाद उसे अपनी पुत्री के दर्शन हुए। बड़े प्रेम के साथ उसने अपनी स्त्रीयाँ पुत्री को छाती से लगाया और उसे गोदी में बैठाकर उससे एक-एक बातें पूछनी शुरू की। उसके दुःखों का हाल सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ। उसने कर्मों का इसलिये कि अनन्तमती इतने कष्टों को सहकर भी अपने धर्म पर ढूँढ़ रही और कुशलपूर्वक अपने पिता से आ मिली, बहुत-बहुत उपकार माना। पिता पुत्री का मिलाप हो जाने से जिनदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने इस खुशी में जिन भगवान का रथ निकलवाया। सबका यथायोग्य आदर सम्मान किया और खूब दान किया।

इसके बाद प्रियदत्त अपने घर जाने को तैयार हुआ। उसने अनन्तमती से भी चलने को कहा। वह बोली-पिताजी मैंने संसार की लीला को खूब देखा है। उसे देखकर तो मेरा जी काँप उठता है। अब मैं घर पर नहीं चलूँगी। मुझे संसार के दुःखों से बहुत डर लगता है। अब तो आप दया करके मुझे दीक्षा दिलवा दीजिये। पुत्री की बात सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ, पर अब उसने उससे घर पर चलने का विशेष आग्रह न करके केवल इतना कहा कि-पुत्री, तेरा यह नवीन शरीर अत्यन्त कोमल है और दीक्षा का पालन करना कठिन है-उसमें बड़ी-बड़ी कठिन परीष्ठ सहनी पड़ती हैं। इसलिये अभी कुछ दिनों के लिये मन्दिर

ही में रहकर अभ्यास कर और धर्मध्यान पूर्वक अपना समय बिता । इसके बाद जैसा तृच्छाही है, वह स्वयं ही हो जायेगा । प्रियदत्त ने इस समय दीक्षा लेने से अनन्तमती को रोका, पर उसके रोम-रोम में वैराग्य प्रवेश कर गया था, फिर वह कैसे रुक सकती थी? उसने मोह जाल को तोड़ कर उसी समय पद्मश्री आर्यिका के पास जिन दीक्षा ग्रहण कर ही ली । दीक्षित होकर अनन्तमती खूब दृढ़ता के साथ तप करने लगी । महीने-महीने के उपवास करने लगी, परीषह सहने लगी । उसकी उम्र और तपश्चर्या देखकर सबको दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती थी । अनन्तमती का जब तक जीवन रहा तब तक उसने बड़े साहस से अपने द्रवत को निभाया । अन्त में वह सन्यास पूर्वकस्मरण कर सहस्रार्थग में जाकर देव हुई । वहाँ वह नित्य नये रत्नों के स्वर्गीय भूषण पहनती है, जिन भगवान की भक्ति के साथ पूजा करती है, हजारों देव देवांगनाएँ उसकी सेवा में रहती हैं । उसके ऐश्वर्य का पार नहीं और न उसके सुख की ही सीमा है । बात यह है कि पुण्य के उड़व से क्या-क्या नहीं होता ।

अनन्तमती को उसके पिता ने केवल विनोद से शीलव्रत दे दिया था । पर उसने उसका बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया । कर्मों के पराधीन सांसारिक सुख की उसने स्वप्न में भी चाह नहीं की । उसके प्रभाव से वह स्वर्ग में जाकर देव हुई, जहाँ सुख का पार नहीं । वहाँ वह सदा जिन भगवान के चरणों में लीन रहकर बड़ी शान्ति के साथ अपना समय बिताती है ।

महात्मा बुद्धदेव ने भी शील के माहात्म्य के बारे में कहा है –

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्टुं सच्चवदिनं ।
अत्तनो कम्मकुवानं त जनो कुरुते पियं ॥ 9 ॥

जो शील और दर्शन (सम्यक् दृष्टि) में सम्पन्न, धर्म में स्थित सत्यवादी और अपने कर्मों को करने वाला है उसको लोग प्रेम करते हैं ।

छन्दजातो अनव्यातो मनसा च फुटो सिया ।

कामेसु च अप्पडिवद्वचितो उद्धसोतो ति वुच्यति ॥ 10 ॥

जो निर्वाण का अभिलाषी है, उसमें जिसका मन लगता है काम भोगों में जिसका चिन बहु नहीं वह ऊर्ध्व म्रोत कहा जाता है ।

असुभानुपरिसं विरहन्तं इन्द्रियेसु सुसंवृतं ।
भोजनम्हि च मत्तंजु सद्धं आरद्धवीरियं ।

तं वं नप्पसहति मारो वातो सेलं व पवतं ॥ 11 ॥

अशुभ (रूप की कुरुपता) को डेखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान और उद्योगी पुस्तकों मार वेरी भी नहीं डिगा सकता, जैसे वायु शिलामय पर्वत को ।

ब्रह्मचर्य का माहात्म्य

लाटडेश भृगुकछु नगर में राजा वसुपाल रहता था । वहाँ एक जिनदत्त नामक सेठ रहता था । उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था । उनकी एक नीली नाम की पुत्री थी, जो अत्यन्त रूपवती थी । उसी नगर में एक समुद्रदत्त नाम का सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था और उन दोनों का एक सागरदत्त नाम का पुत्र था । एक बार महापृजा के अवसर पर मन्दिर में कायोत्सर्ग से खड़ी हुई तथा समस्त आभूषणों से सुन्दर नीली को देखकर सागरदत्त ने कहा कि क्या यह भी कोई देवी है? यह सुनकर उसके मित्र प्रियदत्त ने कहा कि यह जिनदत्त सेठ की पुत्री नीली है । नीली का रूप देखने से सागरदत्त उसमें अत्यन्त आसक्त हो गया और यह किस तरह प्राप्त हो सकती है, इस प्रकार उसके विवाह की चिन्ता से दुर्बल हो गया । समुद्रदत्त ने यह सुनकर उससे कहा कि हे पुत्र! जैन को छोड़कर अन्य किसी के लिये जिनदत्त इस पुत्री को विवाह करने के लिये नहीं देता है ।

तदनन्तर वे दोनों पिता पुत्र कपट से जैन हो गये और नीली को विवाह लिया । विवाह के पश्चात् वे फिर बुद्ध के भक्त हो गये । उन्होंने नीली के पिता के घर जाना भी बन्द कर दिया । इस प्रकार धोखा होने पर जिनदत्त ने यह कहकर सन्तोष कर लिया कि यह पुत्री मेरी हुई ही नहीं है अथवा कुआ आदि में गिर गई है अथवा मर गई है । नीली अपने पिता को प्रिय थी, अतः वह ससुराल में, जिन धर्म का पालन करती हुई एक भिन्न घर में रहने लगी ।

समुद्रदत्त ने यह विचारकर कि बौद्ध साधुओं के दर्शन से, संसर्ग से, उनके वचन, धर्म और देव का नाम सुनने से काल पाकर यह बुद्ध की भक्त हो जायेगी । एक दिन समुद्रदत्त ने कहा कि नीली बेटी! बौद्ध साधु बहुत ज्ञानी होते हैं, उन्हें देने के लिए हमें भोजन बनाकर देंगे । तदनन्तर नीली ने बौद्ध साधुओं को निर्मनित कर बुलाया और उनकी एक-एक प्राणहिता (पर्हनिया) जृती को अच्छी तरह पीसकर तथा मसालों से सुसंकृत कर उन्हें खाने के लिए दे दिया । वे बौद्ध साधु

भोजन कर जब जाने लगे तो उन्होंने पूछा कि हमारी जृतियाँ कहाँ हैं ? नीली ने कहा कि आप ही अपने ज्ञान से जानिये, जहाँ वे स्थित हैं। यदि ज्ञान नहीं है तो वमन कीजिये, आपकी जृतियाँ आपके ही पंट में स्थित हैं। इस प्रकार वमन किये जाने पर उनमें जृतियों के टुकड़े डिखाई दिये। इस घटना से नीली के श्वसुर पक्ष के लोग बहुत रुष्ट हो गये।

तदनन्तर सागरदत्त की वहन ने क्रोधवश उस पर पुरुष के संसर्ग का झूठा दोष लगाया। जब इस दोष की प्रसिद्धि सब ओर फैल गई, तब नीली भगवान् जिनेन्द्र के आगे संन्यास लेकर कायोत्सर्ग से खड़ी हो गई और उसने नियम ले लिया कि इस दोष से पार होने पर ही मेरी भोजन आदि में प्रवृत्ति होगी अन्य प्रकार नहीं। तदनन्तर क्षोभ को प्राप्त हुई नगर देवता ने आकर रात्रि में उससे कहा कि हे महासती! इस तरह प्राण त्याग मत करो, मैं राजा को तथा नगर के प्रधान पुरुषों को स्वप्न देता हूँ कि नगर के सब प्रधान द्वार कीलित हो गए हैं वे महा पतिव्रता स्त्री के बाँये चरण के स्पर्श से खुलेंगे। वे प्रधान द्वार प्रातः काल आपके पैर का स्पर्श कर खुलेंगे, ऐसा कहकर वह नगर देवता राजा आदि को वैसा स्वप्न डिखाकर तथा नगर के प्रधान द्वारों को बन्द कर बैठ गई। प्रातःकाल नगर के प्रधान द्वारों को कीलित देख कर राजा आदि ने पूर्वोक्त स्वप्न का स्मरण कर नगर को सब स्त्रियों के पैरों से द्वारों की ताड़ना कराई परन्तु किसी भी स्त्री के द्वारा एक भी प्रधान द्वार नहीं खुला। सब स्त्रियों के बाद नीली को भी वहाँ उठाकर ले जाया गया। उसके चरणों के स्पर्श से सभी प्रधान द्वार खुल गये। इस प्रकार नीली निर्दोष धोषित हुई और राजा आदि के द्वारा सम्मान को प्राप्त हुई।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव, वेश्या से श्राविका

पाटलीपुत्र में नन्द राजा राज्य करता था। शकटाल उसका मन्त्री था। मन्त्री के स्थूलभद्र और श्रियक दो पुत्र थे, तथा सेणा, वेणा एवं रेणा आदि सात पुत्रियाँ भी थीं। उनकी स्मरण शक्ति अजब-गजब की थी।

पाटलीपुत्र में वररुचि एक ब्राह्मण था, विद्वान् और चतुर भी। वह राजा से बहुत धन लेता था। प्रजा के धन का दुरुपयोग देखकर शकटाल को बड़ा क्लेश होता था। उसने वररुचि को धन देना बन्द कर दिया था। वररुचि ने वैर की गाँठ बाँध ली थी। अतः शकटाल को संकट में डालने में वररुचि सफल हो गया।

परन्तु श्रियक के हाथ से मरकर शकट ने अपने वंश के विनाश को रोक दिया। नन्द ने श्रियक को मंत्री बनने को कहा। पर वह माना नहीं। बोला “स्थूलभद्र मेरा बड़ा भाई है, उसे मंत्री बना लें।”

स्थूलभद्र कोशा वेश्या के राग में मतवाला और मरत था। परन्तु पिता की मृत्यु की सूचना से वह प्रबुद्ध हो गया। वैराग्य में भावित होकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

स्थूलभद्र मुनि दीक्षा लेकर ज्ञान-ध्यान में रत रहने लगे। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए स्थूलभद्र अपने गुरु के साथ पाटलीपुत्र पथारे। चातुर्मास का समय नजदीक आ जाने से गुरु ने वहाँ पर चातुर्मास कर दिया। तब गुरु के समक्ष आकर चार मुनियों ने अलग-अलग चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी। एक मुनि ने सिंह की गुफा में, दूसरे ने सर्प के बिल पर तीसरे ने कुएँ की मेढ़ पर और स्थूलभद्र मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी।

गुरु ने चारों मुनियों को आज्ञा दे दी। सब अपने-अपने इष्ट स्थल पर चले गये। जब स्थूलभद्र मुनि कोशा वेश्या के घर गये तो वह बहुत हर्षित हुई। वह सोचने लगी। ‘बहुत समय का बिछुड़ा प्रेमी वापिस मेरे घर आ गया।’

मुनि ने वहाँ ठहरने के लिए वेश्या की आज्ञा माँगी। उसने मुनि को अपनी चित्रशाला में ठहरने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात् शृंगार आदि करके वह बहुत हाव-भाव दिखाकर मुनि को चलित करने की कोशिश करने लगी, किन्तु स्थूलभद्र अब पहलेवाले स्थूलभद्र न थे। भोगों को किंपाकफल के समान दुखदायी समझकर वे उन्हें टुकरा चुके थे। उनके रग-रग में वैराग्य घर कर चुका था। इसलिए काया से चलित होना तो दूर वे मन से भी चलित नहीं हुए। मुनि की निर्विकार मुख मुद्रा को देखकर वेश्या शान्त हो गई। मुनि का धर्मोपदेश वेश्या के हृदय को छू गया और वह जाग गई। उसने भी भोगों को दुःख की खान समझकर उनको सर्वथा के लिए त्याग दिया और वह श्राविका बन गई।

चातुर्मास समाप्त होने पर सिंह गुफा, सर्प द्वार और कुएँ की मेढ़ पर चातुर्मास करने वाले मुनियों ने आकर गुरु को बन्दन किया। गुरु ने “कृत दुष्करः” कहा, अर्थात् “हे मुनिवरों! तुमने दुष्कर कार्य किया है, मेरी आत्मा तुमसे प्रसन्न है।”

जब स्थूलभद्र मुनि आये तो गुरु महाराज एकदम खड़े हो गए, उस मुनि की ओर हाथ बढ़ाकर “कृत दुष्कर-दुष्करः” कहा, अर्थात् “हे मुने! तुमने

महान् दुष्कर - दुष्कर कार्य किये हैं मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

गुरु की बात सुनकर उन तीनों मुनियों को ईर्ष्याभाव उत्पन्न हुआ। जब दृग्मरा चातुर्मास आया तब सिंह की गुफा में चातुर्मास करने वाले मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा नहीं दी, फिर भी वह वहाँ चातुर्मास करने के लिये चला गया। वेश्या के रूप लावण्य को देखकर उसका चिन चलित हो गया। वेश्या धर्म शीला बन गई थी, परन्तु मुनि ने वेश्या से भोग की कामना व्यक्त की।

वेश्या ने कहा : "मुझे लाख मोहरें दो, तब.....!"

मुनि ने कहा : "हम तो भिक्षुक हैं। हमारे पास धन कहाँ?"

वेश्या ने कहा : "नेपाल का राजा हर एक साधु को एक रत्न-कम्बल देता है। उसका मूल्य एक लाख मोहर है। इसलिए तुम वहाँ जाओ और एक रत्न कम्बल लाकर मुझे दो।"

वेश्या की बात सुनकर वह मुनि नेपाल गया। वहाँ के राजा से रत्न-कम्बल लेकर वापिस लौटा। मुनि को जंगल में कुछ चोर मिले। उन्होंने उसका रत्न कम्बल छीन लिया वह बहुत निराश हुआ। अन्ततः वह पुनः नेपाल गया। अपनी सारी आप बीती कहकर उसने राजा से दूसरे कम्बल की याचना की। अब की बार उसने रत्न कम्बल को बाँस की लकड़ी में डालकर छिपा लिया। जंगल में उसे फिर चोर मिले। उसने कहा : "मैं तो भिक्षुक हूँ मेरे पास कुछ नहीं है।"

उसके ऐसा कहने से चोर चले गये। मार्ग में भूख-प्यास अनेकों कष्टों को सहन करते हुए उस मुनि ने बड़ी सावधानी के साथ रत्न कम्बल उस वेश्या को लाकर दिया। रत्न कम्बल को लेकर वेश्या ने उसे उसी समय अशुचिशोच में फेंक दिया जिससे वह खराब हो गया। यह देखकर मुनि ने कहा : "तुमने यह क्या किया, इसको वहाँ लाने में मुझे कितने कष्ट उठाने पड़े हैं मालूम नहीं है?"

वेश्या ने कहा : "मुने ! मैंने यह सब कार्य तुम्हें समझाने के लिये किया है। जिस प्रकार अशुचि में पड़ने से यह रत्न कम्बल खराब हो गया है, इसी प्रकार काम-भोग रूपी कीचड़ में फँसकर तुम्हारी आत्मा भी मलिन हो जायेगी, पतित हो जायेगी। हे मुने ! जरा विचार करो ! इन विषय भोगों को किंपाक फल के समान दुःखदारी समझकर तुमने इसको ठुकरा दिया था। अब वमन किये

हुए कामभोगों को तुम फिर से स्वीकार करना चाहते हो। वमन किये हुए की वाँचा तो कौए और कुने करते हैं। मुने ! जरा समझो और अपनी आत्मा को सम्झालो।"

वेश्या के मार्मिक उपदेशों को सुनकर मुनि की गिरती हुई आत्मा पुनः संयम में स्थिर हो गई। उन्होंने उसी समय अपने पाप कर्म के लिए "मिच्छामि दुक्कहं" किया और कहा -

स्थूलभद्रः स्थूलभद्रः स एकोऽखिल साधुषु ।

युक्तं दुष्कर-दुष्करकारको गुरुणा जये ॥

अर्थात् सब साधुओं में एक स्थूलभद्र मुनि ही महान् दुष्कर क्रिया के करने वाले हैं। जिस वेश्या के यहाँ बारह वर्ष पहले रहे उसी की चित्रशाला में चातुर्मास किया। उसने बहुत हावभाव पूर्वक भोगों के लिए मुनि से प्रार्थना की किन्तु वे किंचित् मात्र भी चलित न हुए। ऐसे मुनि के लिए गुरु महाराज ने 'दुष्कर-दुष्कर' शब्द का प्रयोग किया था, वह युक्त था ! उचित था !! (नन्दी गा. 79)

देवपुरा शिविर का एक दृश्य



ब्रह्मधाति : अब्रह्मः

किं पाकफलसं भोगसंनिभं तद्वि मैथुनम् ।

आपातमाप्ररम्यं स्याद्विपाकेऽत्यन्तभीतिदम् ॥10॥

वह मैथुन किम्पाक फल (विषफल) के समान प्रारम्य में ही भोगते समय ही रमणीय प्रतीत होता है। परन्तु परिपाक के समय वह अतिशय भयप्रद होता है।

सिक्तोऽप्यम्बुधरप्रातैः प्लावितोऽप्यम्बुराशिभिः ।

न हि त्यजति संतापं कामवह्निप्रदीपितः ॥13॥

वे दोष इस प्रकार हैं— जो प्राणी कामरूप अग्नि से सन्ताप होता है वह मेघसमृहों के द्वारा अभिषिक्त होकर भी सन्ताप को नहीं छोड़ता है तथा समुद्र में डुबोया जाने पर भी वह उस संताप को नहीं छोड़ता है।

मूले ज्येष्ठस्य मध्याहे व्यभ्रे नभसि भास्करः ।

न प्लोषति तथा लोकं यथा दीप्तः स्मरानलाः ॥14॥

ज्येष्ठ मास के प्रारम्य में मध्याह (दोपहर) के समय में यों से रहित आकाश में स्थित सूर्य प्राणियों को वैसा सन्ताप नहीं करता है जैसा कि उदीप हुई (भड़की हुई) कामरूप अग्नि उन्हें सन्ताप करती है। तात्पर्य यह है कि काम का सन्ताप सूर्य के सन्ताप से भी भयानक होता है।

हृदि ज्वलति कामाग्निः पूर्वमेव शारीरिणाम् ।

भस्मसात्कुरुते पश्चादङ्गोपाङ्गानि निर्दयः ॥15॥

कामरूप अग्नि निश्चय से प्राणियों के हृदय में जलती है। परन्तु, वह पीछे निर्दयतापूर्वक उनके अंग और उपांगों को जला डालती है। अभिप्राय यह है कि हृदय में कामवासना के उत्पन्न होने पर प्राणियों का सारा ही शरीर पीड़ित होता है।

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारुवसेवी ।

आयुञ्जलाभं न निकामसेव्यं निन्दं ततियं निरयं चतुर्थं ॥4॥

प्रमादी, परस्त्रीगामी मनुष्य की गतियाँ हैं— अपुण्य का लाभ, सुख से न निन्दा, तीसरे निन्दा और चौथे नरक ।

अयुञ्जलाभो च गती च पापिका

भीतस्य भीताय रती च थोकिका ।

राजा च दण्डं गरुकं पणोति

तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ 5॥

(अथवा) अपुण्यलाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति और राजा का भारी दण्ड देना। इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिये।

हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो ।

भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अज्जे व अतनं ॥22॥

(संसार को) पार होने की कोशिश न करने वाले दुर्बुद्धि (पुरुष) को भोग न न करते हैं। भोग तृष्णा में पड़कर (वह) दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने ही को हनन करता है।

पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं ।

पेमतो विष्प्रमुतस्य नत्थि सोको कृतो भयं ॥5॥

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है। प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।

रतिया विष्प्रमुतस्स नत्थि सोको कृतो भयं ॥6॥

रति (राग) से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न होता है रति से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।

कामतो विष्प्रमुतस्स नत्थि सोको कृतो भयं ॥7॥

काम से शोक उत्पन्न होता है। काम से भय उत्पन्न होता है, काम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

यावमं हि वनयो न छिजति अणुमतोपि नरस्त नारिसु ।

पटिवद्धमनो नु ताव सो वच्छे स्वीरपको व मातरि ॥ २ ॥

जब तक अणुमात्र भी स्त्रियों में पुरुष की कामना रहती है, तब तक दृढ़ पीने वाला बगड़ा जैसे माता में आबद्ध रहता है, वैसे ही वह पुरुष बँधा रहता है।

सुमानुपस्तिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असुवतं ।

भोजनमिह अमतञ्जुं कुसीतं हीनवीरियं ।

तं वे पसहति मारो वातो रुख्यं व दुल्खलं ॥ ७ ॥

शुभ (रूप सौंदर्य) को देखते हुये विचार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत, भोजन की मात्रा न जानने वाले, आलसी और उद्योग हीन पुरुष को मार वैसे ही गिरा देती है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को।

अब्रहा का फल स्त्री की दासता

नासो महत्वमाप्नोति यो नारी पादपूजकः ।

आर्यस्तु कुरुते नैव कार्यमीहविग्यं मुधा ॥ १ ॥

जो लोग अपनी स्त्री के श्री चरणों की अर्चना में ही लगे रहते हैं वे कभी महत्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं और जो महान् कर्मों के करने की उच्चाशा रखते हैं वे ऐसे निकृष्ट प्रेम के पाश में नहीं फँसते ।

अनङ्गरङ्गे किलौ यः प्रसक्तो विषयातुरः ।

गर्हितः स समृद्धोऽपि स्वयमेव विलज्जते ॥ २ ॥

जो आदमी अपनी स्त्री से असीम मोह में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में हास्याख्यद हो जायेगा और लज्जा से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा ।

क्लीव एव नरः सोऽयं स्त्रियो यो हि वरांवदः ।

भ्रेषु लज्जितो भूत्वा नैवोदग्रीवः प्रयाति सः ॥ ३ ॥

जो नामद अपनी स्त्री के सामने झुककर चलता है, सत्पात्र पुरुषों के सामने वह सदा शरमाएगा ।

अहो तस्मिन् महाखेदः स्त्रियो यो हि विकम्पते ।

अभव्यः स च निर्भाग्यः संभाव्या नैव तद्गुणाः ॥ ४ ॥

शोक है उस मुक्ति विहीन अभागे पर जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है, उसके गुणों का कभी कोई आदर न करेगा ।

स्त्रियां विभ्रमवाणाया यो विभेति हि कामुकाः ।

सदगुरुणां स सेवायै भजते नापि साहसम् ॥ ५ ॥

जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह गुरुजनों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता ।

प्रियाया मृदुवाहुभ्यां ये विभ्यति हि कामुकाः ।

लब्धवर्णा न ते सन्ति भूत्वापि सुरसम्निभाः ॥ ६ ॥

जो लोग अपनी स्त्री की कोमल भुजाओं से भयभीत रहते हैं वे यदि देवों के समान भी रहें तब भी उनका कोई मान न करेगा ।

प्रभुत्वं चोलराज्यस्य येन स्वस्मिन्पुसितम् ।

कन्यायां हिविशिष्टायां ततोऽस्याधिक गौरवम् ॥ ७ ॥

जो मनुष्य चोल-राज्य का आधिपत्य स्वीकार करता है, उसकी अपेक्षा एक लजीली कन्या में अधिक गौरव है ।

एषां सर्वत्रकान्तयाः प्रमाणं वाक्यमेव ते ।

मित्राणामिष्टसिद्ध्यर्थं न शक्ता वा सुकर्मणे ॥ ८ ॥

जो लोग अपनी स्त्री के कहने में चलते हैं वे अपने मित्रों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण नहीं कर सकेंगे और न उनसे कोई शुभ काम ही हो सकेगा ।

नो लभन्ते धनं धर्मं कामिनीराज्यशासिताः ।

प्रेमामृतरसस्वादे नापि ते भाग्यशालिनः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य स्त्री-राज्य का शासन स्वीकार करते हैं उन्हें न तो धर्म मिले और न धन, इसके सिवाय न उन्हें अखण्ड प्रेम का आनन्द ही मिलेगा ।

उच्चकार्येषु संलग्नाः सौभाग्येनाभिवद्धिताः ।

ते दुर्वुद्धि न कुर्वन्ति विषयासक्तिनाभिकम् ॥ १० ॥

जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यों में रत हैं और जो सौभाग्य ले के कृपा पात्र हैं वे अपनी स्त्री के मोहजाल में फँसने की कुबुद्धि नहीं कर... ।

वेश्या की लाश – अतिकामुक मूर्ख

धनाय नानूरागाय नरेभ्यः स्पृहयन्ति याः।

तासां मृषाप्रियालापाः केवलं दुःखेतवः ॥ 1 ॥

जो स्त्रियाँ प्रेम के लिये नहीं बल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी मायापूर्ण मीठी बातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

वदन्ति मधुरा वाचः परं ध्यानं धनागमे।

पण्यस्त्रीणां मनोभावं ज्ञात्वैव भव दूरगः ॥ 2 ॥

जो दुष्ट स्त्रियाँ मधुमयी वाणी बोलती हैं परं जिनका ध्यान अपने नफे पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को विचार कर उनसे सदा दूर रहो।

परं तस्य समाश्लेषस्तया तस्या वभाति सः।

कुविष्ठिवै यथाऽज्ञातं स्पृशते सतमं शब्दम् ॥ 5 ॥

वेश्या जब अपने प्रेमी का दृढ़-आलिङ्गन करती है तो वह ऊपर से यह प्रदर्शित करती है कि वह उससे प्रेम करती है परन्तु मन में तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अज्ञात लाश को छूता है।

विशुद्धकार्यसंलग्नाः सदुव्रताः पुरुषोत्तमाः।

कलङ्कितं न कुर्वन्ति निजाङ्गं वारयोषिताः ॥ 4 ॥

जिन लोगों के मन पवित्र कार्यों की ओर हैं, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलङ्कित नहीं करते।

येषामगाधपाण्डित्यं बुशिचापि सुनिर्मला।

रूपाजीवाङ्गसंस्पर्शान् मलिना न भवन्ति ते ॥ 5 ॥

जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते हैं, जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिए खुला है।

न गृहन्ति करं तस्या जनाः स्वहितकारिणः।

विक्रीणति नित्यं रूपं स्वैरिणी याति चञ्चला ॥ 6 ॥

जिनको अपने कल्याण की चाह है वे स्वैरिणी गणिका का हाथ नहीं छूते कि जो अपनी सुन्दरता को बेचती फिरती हैं।

अन्वेषयन्ति तां मुक्तामज्ञा एव पृथग् जनाः।

देहेन स्वजते किन्तु रमतेऽन्यत्र तन्मनः ॥ 7 ॥

जो ओर्ध्वी तवियत के आटमी हैं वे ही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो केवल शरीर से आलिंगन करती है, जबकि उनका मन दूसरी जगह रहता है।

येषां विमर्शशून्याधीर्मन्यते ते हि लम्पटाः।

स्वर्वधा इव वेश्यायाः परिष्वङ्गं सुधामयम् ॥ 8 ॥

जिनमें सोचने समझने की बुद्धि नहीं है उनके लिए चालाक कामनियों का आलिंगन ही अप्सराओं को मोहिनी के समान है।

गणिका कृतशङ्कश नूनं निरयसन्निभा।

तत्प्रणावश्च तद्युर्यत्र मज्जन्ति कामिनः ॥ 9 ॥

भरपूर साज-सिंगार किये और बनी-ठनी स्वैरिणी के कोमल बाहु नरक की अपवित्र नाली के समान हैं जिनमें घृणित मूर्ख लोग अपने को डुबाते हैं।

दुरोदर सुरापानं बहु सक्ता नितम्बिनी।

भाग्यं येषां विपर्यस्तं तेषामानन्दहेतवः ॥ 10 ॥

चंचल मन वाली स्त्री, मद्यापान और जुआ ये उन्हीं के लिए आनन्दवर्द्धक हैं कि जिन्हें भाग्य -लक्ष्मी छोड़ देती है।

स्मरज्वलनसंभ्रान्तो यः प्रतीकारमिच्छति।

मैथुनेन स दुर्बुद्धिराज्येनाग्निं निषेधति ॥ 1 ॥

जो कामरूप अग्नि से व्याकुल होकर उसका प्रतीकार मैथुन क्रिया से करना चाहता है वह मूर्ख धी के ढारा अग्नि को रोकता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार धी के डालने से अग्नि कभी शान्त नहीं होती है, बल्कि अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होती है उसी प्रकार विषय सेवन से कभी काम की बाधा शान्त नहीं होती है, बल्कि वह उत्तरोत्तर वृद्धिंगत ही होती है।

वरमाज्यच्छटोग्रद्धः परिरद्धो हुताशनः।

न पुनर्दुर्गतेद्वारं योषितां जघनस्थलम् ॥ 2 ॥

धी के समूह से सींची गई अग्नि का आलिंगन करना तो अच्छा है, किन्तु नरकादि दुर्गति के ढारभूत स्त्रियों के जघन-स्थान का आलिंगन करना अच्छा

त्रेलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्यं । नहीं है ।

तात्पर्य यह है कि स्त्री सम्भोग धी की आहुति से प्रज्ञविलित हुई अग्नि की अपेक्षा भी भयानक है। कारण यह कि अग्नि से जला हुआ प्राणी तो उसी समय कष्ट पाता है। तथा कठाचित् भोग्य औषधि आदि के उपचार से वह उस भव में भी उसके कष्ट से मुक्त हो जाता है, परन्तु स्त्री संभोग से उत्पन्न पाप के कारण प्राणी अनेक भवों में दुर्गति के कष्ट को भोगता है तथा उसका कोई प्रतिकार भी सम्भव नहीं है।

स्मरशीतज्वरातङ्क शङ्किताः शीर्णबुद्धयः ।
विशन्ति वनितापङ्के तत्प्रतीकारवाञ्छया ॥ 3 ॥

कामरूप शीतज्वर के सन्ताप से भयभीत हुए मृर्खजन उसके प्रतिकार की इच्छा से स्त्री रूप कीचड़ के भीतर निमग्न होते हैं। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हुआ प्राणी दुःख पाता है उसी प्रकार विषय भोग में निमग्न हुआ प्राणी भी अतिशय दुःख पाता है।

वासनाजनितं मन्ये सौख्यं स्त्रीसंगसं भवम् ।
सेव्वमानं यदन्ते स्यादैरस्यायैव केवलम् ॥ 4 ॥

स्त्री के संयोग से उत्पन्न हुआ जो सुख सेवन करते हुए अन्त में केवल नीरसता का ही कारण होता है वह पूर्वकृत कर्म की वासना संरक्षार से उत्पन्न होता है, ऐसा मैं मानता हूँ।

प्रपश्यति यथोन्मत्तः शश्वल्लोष्टेऽपि काञ्चनम् ।
मैथुनेऽपि तथा सौख्यं प्राणी रागान्धमानस ॥ 5 ॥

जिस प्रकार पागल मनुष्य निरन्तर मिट्ठी के ढेले में भी सुर्वण को देखता है उसी प्रकार राग में अन्धे हुए मन वाला-विषयानुराग से अविवेक को प्राप्त हुआ प्राणी मैथुन के सेवन में भी सुख मानता है।

अपथ्यानि यथा रोगी पथ्यबुद्ध्या निषेवते ।
सुखबुद्ध्या तथाङ्गानि स्त्रीणां कामी गत तपः ॥ 6 ॥

जिस प्रकार रोगी पुरुष पथ्य (हितकर) समझकर अपथ्यों का अहितकर (रोगवर्धक) भोजन आदि का सेवन करता है उसी प्रकार कामी पुरुष सुख की इच्छा से निर्लज्ज होकर स्त्रियों के अंगों का सेवन किया करता है।

त्रेलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्यं । नहीं है ।

कश्चिद् ब्रूते यथा दीपं निर्वाणमपि नन्दितम् ।

स्मरमूढः सुखं तद्दद् दुःखमप्यत्र मैथुनम् ॥ 7 ॥

जिस प्रकार कोई बुझे हुए दीपक को नन्दिन (बड़ा हुआ) कहता है उसी प्रकार काम से मृढ़ हुआ मनुष्य यहाँ दुःखदायक मैथुन को सुखकर कहता है।

किंपाकफलसमानं वनितासंभोगसंभवं सौख्यम् ।

आपाते रमणीयं प्रजायते विरसमवसाने ॥ 8 ॥

स्त्री के संभोग से उत्पन्न होने वाला सुख क्रिम्पाक फल (एक विषेला फल) के समान भोगने के समय में रमणीय प्रतीत होता है परन्तु अन्त में वह नीरस परिणाम में दुःखदायक होता है।

मैथुनाचरणे कमँ निघृणैः क्रियतेऽधमम् ।

पीयते वदनं स्त्रीणां लालाम्बुकलुषीकृतम् ॥ 9 ॥

कामीजन मैथुन के सेवन में धृणा से रहित होकर जघन्य कार्य करते हैं, वे लार के जल से मलिन हुए स्त्रियों के मुख का पान करते हैं।

कण्डूयनं तनुस्वेदाद्वेति कुष्ठी यथा सुखम् ।

तीव्रस्मररुजातङ्कपीडितो मैथुन तथा ॥ 10 ॥

जिस प्रकार शरीर के ताप से पीड़ित कुष्ठरोगी खुजालने को सुखकारक मानता है उसी प्रकार तीव्र कामरूप रोग के ताप से पीड़ित मनुष्य मैथुन को सुख कारक मानता है। परन्तु यह उसका भ्रम है, क्योंकि जिस प्रकार खुजालने से अन्त में कोढ़ी को अधिक ही कष्ट होता है उसी प्रकार कामसेवन से भी अन्त में कष्ट ही अधिक होता है।

अशुचीन्यङ्ग नाङ्गानि स्मराशीविषमूर्छिताः ।

जिह्वाभिर्विलहन्त्युजैः शुनीनामिव कुकुराः ॥ 11 ॥

काम रूप सर्प के विष से मूर्छित मनुष्य स्त्री के अपवित्र अंगों को जीभ से इस प्रकार चाटा करते हैं जिस प्रकार कि कुते कुत्तियों के अपवित्र अंगों को अतिशय चाटा करते हैं।

स्वतालुरक्तं किल कुकुराधमैः प्रपीयते यद्विहास्थिचवणात् ।

तथा विटेविद्धि वपुर्विडम्बनैर्निषेधयते मैथुन संभवं सुखम् ॥ 17 ॥

48

जिस प्रकार यहाँ निकृष्ट कुते हड्डी के चबाने से अपने ही तालु से रुधिर को पीकर सुख का अनुभव करते हैं उसी प्रकार कामीजन अपने शरीर की विडम्बना करते हुए मैथुन से उत्पन्न हुए सुख का सेवन करते हैं ।

परस्त्रीत्याग

रूपलावण्यसंव्याप्तदेहयस्तिजुषामपि ।

नासौ रागी परस्त्रीणां धनेधर्मेचयस्यधीः॥ 1 ॥

जिन लोगों की दृष्टि धर्म तथा धन पर रहती है वे कभी चूक करके भी परस्त्री की कामना नहीं करते ।

नास्ति तस्मात् परो मूर्खो यो द्वारं प्रतिवेशिनः।

वीक्षते पापबुद्ध्या स स्वर्धर्मात् पतितो जनः॥ 2 ॥

जो लोग धर्म से गिर गए हैं उनमें उस पुरुष से बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है जो कि पड़ोसी की ड़योढ़ी पर खड़ा होता है ।

असंशयं मुखे मृत्योस्ते तिष्ठन्ति नराधमाः।

असन्देहवतः सख्युर्गृहं यैररभिगम्यते॥ 3 ॥

निःसन्देह वे लोग काल के मुख में हैं जो सन्देह न करने वाले मित्र के घर पर हमला करते हैं ।

कोऽर्थस्तस्य महत्त्वेन रमते यः परस्त्रियाम्।

व्यभिचाराच् समुत्पन्नां लज्जा येन च हेलिता॥ 4 ॥

मनुष्य चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर उसकी श्रेष्ठता किस काम की जब कि वह व्यभिचारजन्य लज्जा का कुछ भी विचार न कर परस्त्री गमन करता है ।

आश्लिष्यति गले यश्च सुलभां प्रतिवेशिनीम् ।

अङ्गमारोप्य तेनैव दूषितं विजनामकम्॥ 5 ॥

जो पुरुष अपने पड़ोसी की स्त्री को गले लगाता है इसलिए कि वह उसे सहज में मिल जाती है, उसका नाम सदा के लिए कलंकित हुआ समझो ।

चत्वारो नैव मुच्छन्ति व्यभिचारिजनं सदा ।

घृणा पापानि भ्रान्तिश्च कलंकेन समन्विताः॥ 6 ॥

व्यभिचारी को इन चार बातों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप, भ्रम और कलंक ।

विरक्तः प्रतिवेशिन्या रूपलावण्य सम्पदि ।

स एव सद्गृही सत्यं कुलजाचारपालकः॥ 7 ॥

सद् गृहस्थ वही है जिसका हृदय अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य तथा लावण्य से आकृष्ट नहीं होता ।

नैवेक्षते परस्त्रीं यः पुंस्त्वं तस्य जयत्यहो ।

न परं तत्र धर्मित्वं महात्मा स हि भूतले॥ 8 ॥

धन्य है उसके पुरुषत्व को जो पराई स्त्री पर दृष्टि भी नहीं डालता है, वह केवल श्रेष्ठ और धर्मात्मा ही नहीं सन्त है ।

बाहुपाशे न यो धत्ते कण्ठाशिलष्टां पराङ्नाम् ।

भोक्ता स एव सर्वेषां श्रेयसां भूमिवर्तिनाम्॥ 9 ॥

पृथ्वी पर की सब उत्तम बातों का पात्र कौन है ? वही जो पराई स्त्री को बाहु पश में नहीं लेता ।

परमन्यत्कृतं पापमराधेऽपि वा वरम् ।

परं न साध्वी त्वत्पक्षे कांक्षिना प्रतिवेशिनी॥ 10 ॥

तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो पर तुम्हारे पक्ष में यही श्रेयरक्षर है कि तुम पड़ोसी की स्त्री से सदा दूर रहो । (कुरलकाव्य) ब्रह्मचर्य पालन में अयोग्य व्यक्ति –

नात्पसत्वैर्न निः शीलैर्न दीनैनक्षिर्निर्जितैः ।

स्वन्देऽपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरैः॥ 5 ॥

जो मनुष्य दुर्बल शील से रहित, दीन और इन्द्रियों के अधीन हैं, वे स्वप्न में भी उस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं कर सकते हैं ।

विश्वामित्रपराशरं प्रभृतयो वाताम्बुशनास्तेऽपि ।

स्त्रीमुखपंकजं सुलितिं दृष्टवैव मोहं गताः ।

शाल्यत्रं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा—

स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेसागरम्॥ 5 9 ॥

जब कि वायु जल और पत्तों को खाने वाले विश्वामित्र और पराशर जैसे महर्षि भी श्रियों के सुन्दर मुख कमल को देखते ही मोहित हो गए, इन्द्रियों का निग्रह न कर सके तो उहीं, दृढ़ और धी से युक्त अन्न को खाने वाले मनुष्यों को यदि इन्द्रिय निग्रह हो जाए तब यह समझने में कोई आश्चर्य नहीं है कि विन्ध्य पर्वत समुद्र पर तैर रहा है।

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखसम्प्राप्ति हेतु ।

मोहस्योत्पत्ति बीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य ।

कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टं दोषं प्रबन्धं

लोकेऽस्मिन्नर्घ्यनर्थवजकुलभवनंयौवनादन्यदस्ति ॥ 6 3 ॥

इस लोक में यौवन को छोड़कर दूसरा कोई अनर्थी की उत्पत्ति का स्थान नहीं है। यह समस्त झगड़े के मूल-भूत-प्रेत का एकमात्र स्थान है। नरकों में प्राप्त होने वाले असद्य दुःखों का मूल कारण है, मोह की उत्पत्ति का बीज है, ज्ञानरूपी चन्द्रमा को ढाँकने वाला मेघ है, कामदेव का अद्वितीय मित्र है और अनेक प्रकार के दोषों को प्रकट करने वाला है।

लीलावतीना सहजा विलासा

स्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ।

रागी नलिन्या हि निसर्गसिद्धि

स्त्रब्रह्मत्येव मुधा षड्ग्रन्थि ॥ 7 0 ॥

मूर्ख मनुष्य सुन्दर श्रियों के प्राकृत हाव-भावों को भी ‘ये हमारे लिए ही इसने किए हैं’ ऐसा समझकर व्यर्थ ही उन पर मोहित होता है। कमलिनी की ललाई स्वाभाविक है पर भ्रमर उसे अपने लिए बनी समझ कर व्यर्थ ही आसक्त होता है और उस पर चक्कर काटा करता है। (भर्तृहरि शतक)

ध्यायतो विषयान्पुः सः संगस्ते पूपजायते ।

संगात्संजायते कामः कामाल्कोधोऽभिजायते ॥ 6 2 ॥

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्त होती है और कामना में से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः समोहात्समृतिविम्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 6 3 ॥

क्रोध में से मृद्गता उत्पन्न होती है, मृद्गता से स्मृतिभ्रंश हो जाती है, स्मृतिभ्रंश होने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है।

Thinking about wordly objects (sens objects) leads a person to attachment to them. This attachment leads to desire which in turn brings in anger. Anger leads to confusion couring ignorance. Ignorance brings in loss of memory which paves the way for loss of wits. And by this loss of reasoning powers a person is completely ruined. (गीता)

सुभानुपस्तिं विहरन्ते इन्द्रियेसु असंबुतं ।

भोजनम्हि अमत्तज्जुं कुसीतं हीनवीरियं ।

तं वे पसहति मारो वातो रूक्षं व दुब्बलं ।

शुभ (रूप-सौन्दर्य) को देखते हुए विहार करने वाले इन्द्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी और उद्योग हीन पुरुष को मार वैसे ही गिरा डेता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को। (धर्मपद)

स्वयं की ही वान्ति स्वयं मत खाओ

प्राचीन काल में वज्रमण्डल में राजा समुद्र विजय राज्य करते थे। अरिष्ठ, नेमि, (तीर्थकर नेमिनाथ), रथ नेमि, सत्य नेमि और दृढ़ नेमि ये चारों समुद्र विजय के पुत्र थे। वसुदेव, समुद्रविजय के छोटे भाई थे। वसुदेव के बलदेव और कृष्ण पुत्र थे। अतः अरिष्ठ, नेमि, कृष्ण और बलदेव चर्चेरे भाई थे।

श्रीकृष्ण नारायण पदवी के धारी अर्द्धचक्री थे। परन्तु नेमिनाथ चरमशरीरी, महापुण्यशाली तीर्थकर होने के कारण प्रचण्ड शक्तिशाली श्रीकृष्ण से भी अधिक शक्तिसम्पन्न थे। श्रीकृष्ण, नेमिनाथ की शक्ति से भयभीत होकर विचार करने लगे। जब तक नेमिनाथ घर पर रहेंगे तब तक मेरा राज्य निष्कंटक नहीं हो सकता है। नेमिनाथ अपनी अद्वितीय प्रचण्ड शक्ति से मेरा राज्य छीन सकते हैं। इस प्रकार विचारकर नेमिनाथ को वैराग्य सम्पन्न कराकर सन्यासव्रत स्वीकार करने

के लिए नेमिनाथ को राजी कराकर वर यात्रा निकाली। मार्ग में श्रीकृष्ण ने अनेक निरीह हरिण आदि पशुओं को रखा था। विवाह के लिए जाते हुए कुमार नेमिनाथ ने पशुओं की करुण क्रन्दन ध्वनि सुनी। उस ध्वनि से उनका कोमल हृदय पिघल गया उन्होंने अपने सारथी साथी से पूछा—ये पशु क्यों बन्द कर रखे हैं? सारथी ने कहा—हे प्रभु आपके विवाह के उपलक्ष्य में भोज दिया जायेगा। उसी के लिए इन हजारों निरीह पशुओं को बन्द करके रखा गया है। मृत्यु के भय से यह संत्रस्त पशु करुणध्वनि से चीकार कर रहे हैं।

करुणा के अवतार नेमिनाथ ने स्वनिमित्त से बाँधे हुए पशुओं को शीघ्र मुक्त करवा दिया। जीवों की अज्ञानता, मूढ़ता, क्रूरता के बारे में एवं जीवों के बारे में सोचते हुए उनके अन्तर्रंग से ज्ञान, वैराग्य और संवेग की धारा फूटकर उछल पड़ी। वे स्व-पर कल्याण के लिए जगत के उद्धार के लिए विवाह बन्धन को तोड़कर दीक्षा के लिए चल दिए। सती राजुल ने भी संसार, शरीर और भोग से विरक्त होकर दीक्षा स्वीकार कर ली। उसके साथ रथनेमि दिग्म्बर मुनि हो गये। कुछ दिनों के उपरान्त एक दिन राजुल रैवतक पर्वत पर जा रही थी, कि बीच में ही वर्षा से भीग गई। जोर की वर्षा हो रही थी और अन्धकार छाया हुआ था। इस रिति में वह गुफा के अन्दर पहुँची। वस्त्र सुखाने के लिए अपने चीरों-वस्त्रों को फैलाती हुई राजमती को यथाजात (नग्न) रूप में रथनेमि ने देखा। वहाँ एकान्त में उस संयत को देखकर वह डर गई। भय से काँपती हुई वह अपनी दोनों भुजाओं से अपने शरीर को आवृत्त कर बैठ गयी तब समुद्रविजय के अंगजात उस राजपुत्र ने राजमती को भयभीत और काँपती हुई देखकर इस प्रकार वचन कहा—

“भद्रे! मैं रथनेमि हूँ। हे सुन्दरी! हे चारू भाषिणी! तू मुझे स्वीकार कर। हे सुतनु! तुझे कोई पीड़ा नहीं होगी। निश्चित ही मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। आओ हम भोगों को भोगें। बाद में भक्तभोगी, हम जिन-मार्ग में दीक्षित होंगे।”

संयम के प्रति भग्नोद्योग—उत्साह हीन तथा भोग वासना से पराजित रथनेमि को देखकर वह सम्भान्त न हुई अर्थात् घबराई नहीं, उसने वस्त्रों से अपने शरीर को पुनः ढक लिया। नियमों और व्रतों में सुरिथत अविचल रहने वाली श्रेष्ठ राजकन्या

राजमती ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा—

जइसि रुरेण वेसमणो ललिएण नलकूवरो ।

तहा विते न इच्छामि जइ सि सब्वं पुरन्दरो॥4 1॥

राजमती—यदि तू रूप से वैश्रमण के समान है, ललित कलाओं से नलकूवर के समान है, और तो क्या, तू साक्षात् इन्द्र भी है, तो भी मैं तुझे नहीं चाहती हूँ।

पाक्खंदे जलियं जोइं धूमकेउं दुरासयं।

नेच्छन्ति वंतयं भोतुं, कुले जाया अंगधणे॥4 2॥

अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प धूप की ध्वजा वाली प्रज्वलित, भयंकर, दुष्प्रवेश, अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किए हुए अपने विष को पुनः पीने की इच्छा नहीं करते हैं।

धिगत्यु ते जसोकामी जो तं जीवियकारणा।

वन्तं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे॥4 3॥

हे यशः कामिन्! धिक्कार है तुझे क्योंकि तू भोगी जीवन के लिए वान्ति त्यक्त भोगों को पुनः भोगने की इच्छा करता है, इससे तो तेरा मरना श्रेयस्कर है।

अहं च भोयरायस्स तं च सि अन्धगवण्हणो।

मा कुले गन्धणा होमो संजमं निहुओ चर॥4 4॥

मैं भोजराज की पौत्री हूँ और तू अन्धक-वृष्णि का पौत्र है। हम कुल में गन्धक सर्प की तरह न बनें। तू निभृत(स्थिर) होकर संयम का पालन कर।

जइ तं काहिसि भारं जा-जा दिच्छसि नारिओ।

वायाविद्योव्व हठो अटिं अप्पा भविस्ससि॥4 5॥

यदि तू जिस किसी स्त्री को देखकर ऐसे ही राग-भाव करेगा, तो वायु से कम्पित हड (वनस्पति विशेष) की तरह तू अस्थितात्मा होगा।

गोवालो भण्डावालो वा, जहा तद्धत्वर्जणस्तरे।

एवं अणिस्सरोतं पि; सामण्णस्स भविस्ससि॥4 6॥

जैसे गोपाल और भाण्डपाल उस द्रव्य के गायों और किराने आदि के

स्वामी नहीं होते हैं। उसी प्रकार तृ भी श्रामण्य का स्वामी नहीं होगा।

कोहं माणं निगिण्हिता मायं लोभं च सत्त्वसो।

इन्द्रियाइं वसे काउं अग्पाणं उवसंहरे॥४७॥

तृ क्रोध, मान, माया और लोभ को पूर्णतया निग्रह करके इन्द्रियों को वश में करके अपने आप को उपसंहार कर—अनाचार से निवृत्त कर।

उस संयमता के सुभाषित वयनों को सुनकर रथनेमि धर्म में सम्पद्यक प्रकार से वैसे ही रिथर हो गया, जैसे अंकुश से हाथी हो जाता है। वह मन, वचन, और काय गुप्त जितेन्द्रिय और ब्रतों में दृढ़ हो गया। जीवन पर्यन्त निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन करता रहा।

एवं करेन्ति संबुद्धा पाण्डिया पवियवश्वणा।

विणियटटन्ति भोगेसु जहा सो पुरिसोत्तमो॥५९॥

सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं। पुरुषोत्तम रथनेमि की तरह वे भोगों से निवृत्त हो जाते हैं।

अब्रह्मचर्य के भेद

१०. विध अब्रह्म –

पर्यन्तविरसं विद्रिध दशधान्यच्च मैथुनम्।

योषित्संगाद्विरक्तेन त्याज्यमेव मनीषिणा॥६॥

ज्ञाना०आ० १ ।

इस ब्रह्मचर्य के विरुद्ध अन्य जो मैथुन है वह उस प्रकार का है और वह अन्त में नीरस है—परिणाम में अहितकारक है, ऐसा निश्चित जानना चाहिए, इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को स्त्री सम्भोग से विरक्त होकर उस मैथुन का परित्याग ही करना चाहिए।

आद्यं शारीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम्।

तोर्यत्रिकं तृतीयं स्यात् संसर्गस्तुर्यमिष्यते॥७॥

योषिद्वयसंकल्पः पञ्चमः परिकीर्तितम्।

तदङ्गवीक्षणं षष्ठं सत्कारः सप्तमं मतम्॥८॥

पूर्वानभूतसं भोगस्मरणं स्यात्तदष्टमम्।

नवमं भाविनी चिन्ता दशमं वस्तिमोक्षणम्॥ ९॥

उक्त उस प्रकार के मैथुन में प्रथम शरीर का संस्कार (शृंगार), द्वितीय गरिष्ठ भोजन, तीसरा तौर्यत्रिक—गीत का सुनना, नृत्य का देखना और वाद्य का सुनना, चौथा स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करना, पाँचवा स्त्री विषयक विचार, छठा स्त्री के अंगों को देखना, साँतवाँ स्त्री का सत्कार करना, आठवाँ पूर्व में अनुभव किये गए सम्पोग का स्मरण करना, नौवाँ आगे की चिन्ता और दसवाँ वीर्य का क्षरण माना गया है।

विरज्य कामभोगेषु ये ब्रह्म समुपासते।

एते दश महादोषास्तैस्त्याज्या भावशुद्धये॥ ११॥

जो सञ्चन काम और भोगों से विरक्त होकर ब्रह्म (आत्मा) की उपासना करते हैं उन्हें अपने परिणामों को निर्मल रखने के लिए इन दश दोषों का परित्याग करना चाहिए।

स्मरप्रकोपसंभूतान् स्त्रीकृतान् मैथुनोत्थितान्।

संसर्गप्रभवान् ज्ञात्वादोषानस्त्रीषुविरज्यताम्॥ १२॥

इसके अतिरिक्त काम के प्रकोप से उत्पन्न हुए स्त्री के द्वारा किये गये मैथुन क्रिया से उत्पन्न हुये तथा संगतिके आश्रय से होने वाले दोषों को जानकर स्त्रियों के विषय में विरक्त होना चाहिये।

कामासक्त व्यक्ति का अति साहस

माणिकांजन सुन्दरी नाम की एक वेश्या ने अपने पर प्रेम करने वाले एक अंजन नाम के चोर से कहा—प्राणवल्लभ आज मैंने प्रजापाल महाराज की कनकवती नाम की पट्टरानी के गले में रत्न का हार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। मेरा तो यह भी विश्वास है कि संसार भर में उसकी तुलना करने वाला कोई और हार होगा ही नहीं सो आप उसे लाकर मुझे दीजिये, तब ही आप मेरे स्वामी हो सकेंगे अन्यथा नहीं।

माणिकांजन सुन्दरी की ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर पहले तो वह कुछ हिचका पर साथ ही उसके प्रेम ने उसे वैसा करने को बाध्य किया। वह अपने

जीवन की भी कुछ परवाह न कर हार चुरा लाने के लिये राजमहल पहुँचा और मौका देखकर महल में घुस गया। रानी के शयनागार में पहुँचकर उसने उसके गले से बड़ी कुशलता के साथ हार निकाल लिया। हार लेकर वह चलता बना। अनेकों पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर वह साफ निकल जाता पर अपने दिव्यप्रकाश से गढ़े से गढ़े अंधकार को भी नष्ट करने वाले हार ने उसे सफल नहीं होने दिया। पहरेदारों ने उसे हार ले जाते हुए देख लिया। वे उसे पकड़ने को दौड़े। अंजन चोर भी खूब जी जोड़कर भागा पर आखिर कहाँ तक भाग सकता था। पहरेदार उसे पकड़ लेना ही चाहते थे पर उसने एक नई युक्ति की। वह हार को पीछे की ओर जोर से फेंक कर भागा। सिपाही लोग तो हार उठाने में लगे और इधर अंजन चोर बहुत दूर निकल आया। सिपाहियों ने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। वे उसका पीछा किये चले ही गये, अंजन चोर भागता-भागता स्मशान की ओर जा निकला।

काम सर्प दंश के 10 वेग—

भोगिदष्टस्य जायन्ते वेगः सप्तैव देहिनः।
स्मरभोगीन्द्रदष्टानां दशस्युत्ते महाभया ॥२८॥

सर्प के द्वारा डसे गये प्राणी के सात ही वेग उत्पन्न होते हैं। किन्तु कामदेव रूप सर्पराज के द्वारा डसे गये उसके वशीभूत हुये प्राणियों के महान् भय को उत्पन्न करने वाले वेग दस हुआ करते हैं।

प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति।
स्युस्तुतीयेऽतिनिश्वासाश्चतुर्थे भजते ज्वरम् ॥२९॥
पञ्चमे दद्यते गात्रं षष्ठे भक्तं न रोचते।
सप्तमे स्यान्महामूर्च्छा उन्मत्तवमथाष्टमे ॥३०॥
नवमे प्राणसंदेहो दशमे—मुच्यते—१५सुभिः।
एतैर्वैगैः समाक्रान्तो जीवस्तत्वं पश्यति ॥३१॥

वे दस वेग इस प्रकार हैं, पहले वेग में चिन्ता उत्पन्न होती है— स्त्री के विषय में विचार उद्दित होता है, दूसरे वेग में उसको देखने की इच्छा करता है, तीसरे वेग में अतिशय श्वासोच्छ्वास होते हैं—वह दीर्घ श्वासों को छोड़ता है,

चौथे वेग में ज्वर का अनुभव करता है, पाँचवे वेग में शरीर में दाह उत्पन्न होती है, छठे वेग में भोजन नहीं रुचता है, सातवें वेग में दीर्घ मूर्च्छा आती है— वह अचेत हो जाता है, आँठवे में उन्मत्तता होती है— वह पागल के समान चेष्टा करने लगता है, नौवें वेग में प्राणों का सन्देह होने लगता है— वह मरणोन्मुख हो जाता है, और दसवें वेग में प्राणों से मुक्त हो जाता है— मर जाता है। इस प्रकार इन दस वेगों से पीड़ित होकर कामी जीव वस्तुस्वरूप को नहीं देखता है।

संकल्पवशतस्तीव्रा वेगा मन्दाश्च मध्यमाः।

मोहज्वरप्रकोपेन प्रभवन्तीह देहिनाम् ॥३२॥

लोक में मोहरूप ज्वर के प्रकोप से प्राणियों के संकल्प के अनुसार वे वेग तीव्र, मध्यम और मन्द भी होते हैं।

कामान्ध की दशा—

शीलशालमतिक्रम्य धीधनैरपि तन्यते।

दासत्वमन्त्यजस्त्रीणां संभोगाय स्मराज्ञया ॥३४॥

जो बुद्धिरूप धन के धारक हैं— अतिशय बुद्धिमान हैं वे भी कामदेव की आज्ञा से शीलरूप कोट को लाँघकर सम्भोग के लिये चाण्डाल स्त्रियों की भी दासता को करते हैं। तात्पर्य यह है कि काम के वशीभूत हुआ मनुष्य नीच स्त्रियों की भी सेवा किया करता है।

नासने शयने याने स्वजने भोजने स्थितिम्।

क्षणमात्रमपि प्राणी प्राप्नोति स्मरशत्यिः ॥३६॥

प्राणी कामरूप कौटे से पीड़ित होकर आसन (बैठने), शयन, गमन, कुटुम्बी—जन और भोजन के विषय में क्षणभर भी स्थिरता को नहीं प्राप्त होता है।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कौटे से बिछु हुआ मनुष्य उनकी वेदना से अतिशय दुःखी होता है और इसीलिए उसका मन भोजनपानादि किसी भी कार्य में नहीं लगता है उसी प्रकार काम की वेदना से व्याकुल मनुष्य का भी मन किसी कार्य में नहीं लगता है।

वित्तवृत्तबलस्यान्तं स्वकुलस्य च लाज्जनम्।

मरणं या समीपस्थं न स्मरात्प्रपश्यति ॥३७॥

काम से पीड़ित मनुष्य धन, संयम व शक्ति के विनाश को, अपने कुल की मलिनता को तथा समीप में आये हुये मरण को भी नहीं देखता है।

अनासाद्य जनः कामी कामिनीं हृदयप्रियाम्।

विषशस्त्रानलोपायैः सद्य स्वं हन्तुमिच्छति ॥ ३९ ॥

कामी पुरुष अपने हृदय को प्रिय लगने वाली स्त्री को न पाकर विष, शस्त्र और अग्नि आदि उपायों के द्वारा शीघ्र ही अपने आत्मघात की इच्छा करता है।

दक्षो मूढः क्षमी क्षुद्रः शूरो भीरूर्गूरुधुःः।

तीक्ष्णः कुण्ठो वशी भ्रष्टो जनः स्यात् स्मरमोहितः ॥

काम से मुग्ध हुआ प्राणी चतुर होकर भी मूर्ख हो जाता है। क्षमाशील होकर भी दुष्ट बन जाता है। शूर होकर भी कायर जैसी चेष्टा करने लगता है। महान होकर भी हीनता का कार्य करता है। तीक्ष्ण होकर भी कुण्ठित हो जाता है तथा जितेन्द्रिय होकर भी भ्रष्ट हो जाता है।

कुर्वन्ति वनिताहे तोरचिन्त्यमपि साहसम् ।

नराः कामहठात्कार विधुरीकृतचेतसः ॥ ४१ ॥

जिन मनुष्यों ने मन को काम के द्वारा बलपूर्वक व्याकुल किया है वे स्त्री के निमित्त अचिन्तनीय (अपूर्व) भी साहस को किया करते हैं। अभिप्राय यह है कि जो कार्य सर्वसाधारण के लिये अतिशय कठिन प्रतीत होते हैं उनके करने का भी कामी पुरुष साहस किया करता है। इसके लिए अंजन चोर आदि के अनेकों उदाहरण कथा ग्रन्थों में देखे जाते हैं।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः ।

चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ॥ ३५ ॥

आत्मानुशासन

जिसके नेत्र इन्द्रियविषयों के द्वारा अन्धे कर दिये गये हैं अर्थात् विषयों में मुग्ध रहने से जिसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो चुकी है ऐसा यह प्राणी उस लोकप्रसिद्ध अन्धे से भी अधिक अन्धा है, क्योंकि अन्धा प्राणी तो केवल चक्षु के ही द्वारा नहीं जान पाता है परन्तु वह विषयान्ध मनुष्य इन्द्रियों और मन आदि में से किसी के द्वारा भी वस्तु स्वरूप को नहीं जान पाता है।

आशाहुताशनग्रस्तवस्तूचैर्वराजां जनाः ।

हा किलैत्य सुखाच्छायां दुःखर्मापनोदिनः ॥ ४३ ॥

खेद है कि अज्ञानी प्राणी आशारूप अग्नि से व्याप्त भोगोपभोग वस्तु स्वरूप ऊँचे बासों से उत्पन्न हुई सुख की छाया (सुखाभास=दुःख) को प्राप्त करके दुःख स्वरूप संताप को दूर करना चाहते हैं।

जो अज्ञानी प्राणी विषयतृष्णा के वश होते हुए अभीष्ट भोगोपभोग वस्तुओं को प्राप्त करके वयार्थ सुख प्राप्त करना चाहते हैं उनका यह प्रयत्न इस प्रकार का है जिस प्रकार कि सूर्य के ताप से पीड़ित होकर कोई मनुष्य उस संताप को दूर करने के लिये अग्नि से जलते हुये ऊँचे बासों की छाया को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अभिप्राय यह है कि प्रथम तो ऊँचे बासों की कुछ उपयुक्त छाया ही नहीं पड़ती है, दूसरे वे अग्नि से जल भी रहे हैं, अतएव ऐसे बासों की छाया का आश्रय लेने वाले प्राणियों का वह संताप जिस प्रकार नष्ट न होकर और अधिक बढ़ता ही है उसी प्रकार विषय तृष्णा को शान्त करने की अभिलाषा से जो प्राणी इष्ट सामग्री के संचय में प्रवृत्त होता है इससे उसकी वह तृष्णा भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही है, परन्तु कम नहीं होती। जैसा कि समन्तभद्र स्वामी ने भी कहा है—

तृष्णाचिषः परिदहन्ति न

शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ।

स्थित्यैवकायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान्

विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत ॥

पृ० स्व० ८२

अर्थात् विषयतृष्णारूप अग्नि की ज्वालायें प्राणी को सब ओर से जलाती हैं। इनकी शान्ति इन्द्रियविषयों की वृद्धि से नहीं होती बल्कि उससे तो वे और अधिक बढ़ती हैं।

खातेऽभ्यासजलाशयाऽजनि शिला प्रारब्धनिर्वाहिणा,

भूयोऽभेदि रसातलावधि ततः कृच्छ्रात्सुतुच्छं किल ।

क्षारं वार्युदगात्तदप्युपहतं पूतिकृमिश्रेणिभिः,

शुष्कं तच्च पिपासतोऽस्य सहसाकष्टं विधेश्चेष्टितम् ॥ ४४ ॥

निकट में जल प्राप्ति की इच्छा से भूमि को खोदने पर चट्टान प्राप्त हुई तब प्रारम्भ किये हुए इस कार्य का निर्वाह करते हुये उसने पाताल पर्यन्त खोदकर उस चट्टान को तोड़ दिया तत्पश्चात् वहाँ बड़े कष्ट से कुछ थोड़ा सा जो खारा जल प्रगट हुआ वह भी दुर्गन्ध युक्त और क्षुद्र कीड़ों के समूह से व्याप्त था। इसको भी जब वह पीने लगा तब वह भी शीघ्र सूख गया। खेद है कि दैव की लीला विचित्र है।

शुद्धैर्धैर्नैर्विवर्धन्ते सतामपि न संपदः।
न हि स्वच्छाम्बुधिः पूर्णाः कदाचिदपिसिन्धवः॥४५॥

शुद्ध धन के द्वारा सज्जनों की भी सम्पत्तियाँ विशेष नहीं बढ़ती हैं। ठीक है—नदियाँ शुद्ध जल से कभी भी परिपूर्ण नहीं होती हैं।

स धर्मो यत्र नार्थमस्तसुखं यत्र नासुखम्।
तज्जानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः॥४६॥

धर्म वह है जिसके होने पर अर्थम न हो, सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो, ज्ञान वह है जिसके होने पर अज्ञान न रहे, तथा गति वह है जिसके होने पर आगमन न हो।

प्रकुप्यति नरः कामी बहुतं ब्रह्मचारिणे।
जनाय जाग्रते चौरो रजन्यां संचरन्निव॥४३॥

जिस प्रकार रात में संचार करने वाला चौर जागने वाले मनुष्य के ऊपर कुपित होता है उसी प्रकार प्रायः कामी पुरुष ब्रह्मचारी मनुष्य के ऊपर कुपित होता है।

स्नुषां शवशुं सुतां धात्री गुरुपत्नी तपस्त्विनीम्।
तिरश्चीमपि कामार्तो नरः स्त्रीं भोक्तुमिच्छति॥४४॥

काम से पीड़ित मनुष्य पुत्रवधु, सास, पुत्री, उपमाता (माताजी) गुरु की पत्नी, साध्वी और तिर्यज्जनी (स्त्री पशु) को भी भोगने की इच्छा करता है।

संसर्गाद् दुर्बलां दीनां संत्रस्तामप्यनिच्छतीम्।
कुष्ठिनीं रोगिणीं जीर्णा दुःखितां क्षीणविग्रहाम्॥४०॥
निन्दितां निन्द्यजातीयां स्वजातीया तपस्त्विनीम्।
वालामपि तिरश्चीं स्त्रीं कामी भोक्तुं प्रवर्तते॥४१॥

विषयी मनुष्य अतिशय पुरुष संयोग के कारण दुर्बलता को प्राप्त हुई, दरिद्र, भयभीत, स्वयं इच्छा न करने वाली, कोठ से ग्रसित, रोगयुक्त, वृद्ध, दुखित, कृश शरीरवाली, घृणित नीच जाति की अपनी ही जाति की, तपस्या करने वाली, अल्पवयरक और पशु स्त्री तक को भोगने में प्रवृत्त हो जाता है।

अब्रह्म का फल

आहीर देश के नासिक्य नगर में राजा कनकरथ रहते थे। उनकी रानी का नाम कनकमाला था। उनका एक यमदण्ड नाम का कोतवाल था। उसकी माता अत्यन्त सुन्दरी थी। वह यौवन अवस्था में ही विधवा हो गई थी तथा व्यभिचारिणी बन गई थी। एक दिन उसकी पुत्र वधु ने रखने के लिये आभूषण दिया। उस आभूषण को पहनकर वह रात्रि में अपने पहले से संकेतित जार के पास जा रही थी। यमदण्ड ने उसे देखा और एकान्त में उसका सेवन किया। यमदण्ड ने उसका आभूषण लाकर अपनी स्त्री को दिया। स्त्री ने देखकर कहा कि यह आभूषण तो मेरा है मैंने रखने के लिये सासके हाथ में दिया था। स्त्री के वचन सुनकर यमदण्ड कोतवाल ने विचार किया कि मैंने—जिसके साथ उपभोग किया, है वह मेरी माता होगी। तदनन्तर यमदण्ड ने माता के जार के संकेतगृह (मिलने के स्थान) पर जाकर उसका पुनः सेवन किया और उसमें आसक्त होकर गृहरीति से उसके साथ कुर्कम करने लगा।

एक दिन उसकी स्त्री को जब यह सहन नहीं हुआ तब उसने अत्यन्त कुपित होकर धोविन से कहा कि हमारा पति अपनी माता के साथ रमता है। धोविन ने मालिन से कहा। मालिन कनकमाला रानी की अत्यन्त विश्वासपात्र थी वह उसके निमित्त फूल लेकर गई। रानी ने कौतूहल वश उससे पूछा कि कोई अपूर्व बात जानती हो? मालिन कोतवाल से द्वेष रखती थी अतः उसने रानी से कह दिया कि देवी! यम दण्ड कोतवाल अपनी माता के साथ रमण करता है। कनकमाला ने यह समाचार राजा से कहा और राजा ने गुप्तचर के द्वारा उसके कुर्कम का निश्चय कर कोतवाल को पकड़वाया। दण्डित होने पर वह दुर्गति को प्राप्त हुआ।

अनङ्ग की विश्वविजयी शक्ति—

एक एव स्मरो वीरः स चैकोऽचिन्त्यविक्रमः।
अवज्ञायैव येनेदं पादपीठीकृतं जगत्॥ १८॥

(ज्ञाना अ ११)

चूंकि कामदेव ने इस लोक को तिरस्कारपूर्वक अपना पाद-पीठ बना लिया है, उसे पैरों से कुचल डाला है, अतएव निश्चित है कि लोक में एक वही वीर है और वही एक अद्यन्त पराक्रम का भी धारक है।

एकाक्यपि जयत्येष जीवलोकं चराचरम् ।

मनोभूर्भव्मानोय स्वशक्त्याव्याहतक्रमः॥ १९॥

निर्वाथ पराक्रम का धारक वह कामदेव त्रस व स्थावर प्राणियों से परिपूर्ण जीवलोक को अपनी शक्ति के प्रभाव से अकेला ही खण्डित करके जीतता है।

पीड यत्येव निःशङ्केन मनोभूर्भवनत्रयम् ।

प्रतीकारशतेनापि यस्य भङ्गो न भूत्वे॥ २०॥

वह कामदेव निर्भय होकर तीनों ही लोकों को पीड़ित करता है। यदि उसका सैकड़ों प्रकार से भी प्रतीकार किया जाय तो भी इस पृथ्वी के ऊपर वह किसी के द्वारा भी नहीं रोका जा सकता है।

कालकूटादहं मन्ये स्मरसंज्ञं महाविषम् ।

स्यात्पूर्वं सप्रतीकारं निःप्रतीकारमुत्तरम्॥ २१॥

कामदेव नामक महाविष कालकूट विष की अपेक्षा अतिशय भयानक है, ऐसा मैं मानता हूँ। कारण यह कि कालकूट विष का तो प्रतीकार (उपाय) है, किन्तु उस कामदेव नामक महाविष का कोई प्रतीकार नहीं है।

जन्तु जातमिदं मन्ये स्वरवद्विप्रदीपितम् ।

मञ्चत्यर्गाधमध्यास्य पुरुष्मीकायकर्दमम्॥ २२॥

यह प्राणिसमूह कामदेवरूप अग्नि से सन्तप्त होकर स्त्री के शरीर रूप अथाह कीचड़ का आश्रय लेता हुआ उसके भीतर ढूब जाता है, ऐसा मैं समझता हूँ।

अनन्तव्यसनासारदुर्गे भवमरुस्थले ।

स्मरज्जरपिपासार्ता विषधने शरीरिणः॥ २३॥

अनन्त दुःखरूप सैन्य की व्याप्ति से दुर्गम (अथवा अनन्त दुःख से परिपूर्ण होकर वर्षा की दुर्लभता से सहित) ऐसे संसाररूप मरुस्थल के भीतर कामज्जररूप घास से पीड़ित प्राणी खेद को प्राप्त होते हैं।

धृणास्पदमतिकूरं पापाद्यं योगिदूषितम् ।

जनोऽयं कुरुते कर्म स्मरशार्दूलचर्वितः॥ २४॥

यह प्राणी कामदेवरूप सिंह का ग्रास बनकर जिस धृणित व अतिशय क्रूरतापूर्ण कृत्य को करता है वह पाप से परिपूर्ण होने के कारण योगीजनों के द्वारा निन्दित है।

दिग्मूढमय विभ्रान्तमुन्मत्तं शङ्खिताशयम् ।

विलक्षं कुरुते लोकं स्मरवैरी विजृम्भितः॥ २५॥

कामदेवरूप शत्रु का विकास लोक को दिग्मूढ़ दिशाज्ञान से रहित, भ्रान्ति से संयुक्त, उन्मत्त, सुध-बुध से रहित, शक्ति चित्त वाला और आश्चर्यचकित करता है।

न हि क्षणमपि स्वस्थं चेतः स्वनेऽपि जायते ।

मनोभवशरप्रातैर्भिर्घमानं शरीरिणाम्॥ २६॥

कामदेव के बाणसमूहों से बेधा जाने वाला प्राणियों का मन स्वज में भी क्षणभर के लिये स्वस्थ नहीं रहता है, वह सदा ही व्याकुल रहता है।

जानन्त्वापि न जानाति पश्यन्त्वापि न पश्यति ।

लोकः कामानलज्वालाकलापकवलीकृतः॥ २७॥

कामरूप अग्नि की ज्वालाओं को समूह से ग्रसित लोक वस्तुस्वरूप को जानता हुआ भी नहीं जानता है तथा देखता हुआ भी नहीं देखता है। तात्पर्य यह कि काम से पीड़ित मनुष्य की विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है।

अपि मानसमुत्तुङ्गनगशृङ्गवर्तिनाम् ।

स्मरवीरः क्षणार्थेन विधत्ते मानखण्डनम्॥ ३३॥

जो प्राणी मानरूप ऊँचे पर्वत के शिखर पर स्थित है उनके उस मान का खण्डन कामदेवरूप सुभट क्षणभर में कर डालता है। अभिप्राय यह है कि काम के आगे बड़े-बड़े अभिमानी जनों का भी मान गलित हो जाता है।

प्रवृद्धमपि चारित्रं ध्वंसयत्याशु देहिनाम् ।

निरुणद्धि श्रुतं सत्यं धैर्यं च मदनव्यथा॥ ३९॥

काम की पीड़ा प्राणियों के वृद्धिगत भी चरित्र को शीघ्र नष्ट करके उनके

ॐ त्रिलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य ॥१॥

आगमज्ञान, सत्य और धैर्य को भी रोक देती है।

आसंसार त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात
नाद्वा॑ नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा।
योऽयं धते विषयकरिणी गाढ़गृहभिमानक्षीवस्यान्तः
करणकरिणः संयमानायलीलाम् ॥ 42 ॥

वैराग्य शतक
हे पिता! सृष्टि के आरम्भ से मैने सारा संसार छान डाला पर ऐसा कोई सुनने
में न आया जो विषयरूपी हाथिनी में अतिरुढ़ और गृह अभिमान से उन्मत
अन्तःकरणरूपी हाथी को समय रूपी रसी में रोक ले।

मत्ते भकु भदलने भुवी सन्ति शूराः
के चित्प्रचण्डमृग राजवधे १पि दक्षाः
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥ 52 ॥

श्रृंगार शतक पृ. 149
कुछ वीर मदमत्त गजराज को मारने में सिद्ध हस्त हैं, तो कुछ सिंह को मारने
में परन्तु मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि कामदेव के घमण्ड को खण्डित करनेवाला
वीर शायद ही कोई होगा।

तावन्महत्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता।

यावज्ज्वलति नाड्गेषु हतः पंचेषु पावकः ॥ 55 ॥

तभी तक बड़प्पन, पांडित्यः, कुलीनता और भले-बुरे का विचार हुआ करता
है जब तक हृदय कामाग्नि की ज्वाला नहीं धधकती है।

कृशः काणः खञ्जः श्रवण रहितः पुच्छविकलेः
व्रणी पूयक्षिलन्नः कृमिकुलशतैरावृत तनुः
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरक कपालार्पितगलः
शुनीमन्तेति हा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥ 57 ॥

दुर्बल, काना, लंगडा, कनकटा, पूँछकटा, फोड़ों से भरा, पीव भरा, सैंकड़ों
कीड़ों से व्याप्त, भूख से व्याकुल बूढ़ा और मिट्टी के घड़े में फँसे हुए गर्दन वाला

ॐ त्रिलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य ॥२॥

कुता भी कुती के पीछे-पीछे लगा ही रहता है। ठीक ही है कामदेव मरे को भी
मारता ही है।

संसारऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभुवनद्वारसेवाकलङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्य कथममलधियो मानसं संविदध्युः।
यद्यता प्रोद्यदिन्दुघतिनिचयभूतो न स्युरभोजनेत्राः
प्रह्लत्कांचीकलापाः स्तनभर विनमन्मध्यभागाक्तरुण्यः ॥ 94 ॥

इस निस्तत्व संसार में निर्मल विचार वाले लोग भी अधीर चित्त होकर दुष्ट
राजाओं की सेवा में कैसे उपस्थित होते यदि उदीयमान चन्द्रमा की कांति के समान
तथा कमल सदृश नेत्रवाली स्तनों के भार से कुछ-कुछ झुके हुए मध्यमान वाली
स्त्रियाँ न होतीं।

उन्मूलयत्यविशान्तं पूज्यं श्रीधर्मपादपम्।
मनोभवमहादन्ती मनुष्याणां निरङ्कुशः ॥ 42 ॥

ज्ञानार्थव

कामदेव रूप मदोन्मत्त हाथी निरङ्कुश, नियंत्रण से रहित होकर, निरन्तर मनुष्यों
के पूजनीय व शोभायमान धर्मरूप वृक्ष को उखाड़ा करता है।

किं च कामशरव्रातजर्जरे मनसि स्थितिम्।
निमेषमति वध्नापि न विवेकसुधारसः ॥ 45 ॥

और भी काम के वाण समूह के जर्जर (छेद्युक्त) किये गये मन के भीतर
विवेकरूप अमृतरस क्षण भर भी स्थिति को नहीं बांधता है। अभिप्राय यह है कि
जिस प्रकार छेदों से युक्त बर्तन से भरा गया पानी क्षण भर भी स्थित नहीं रहता
है उसी प्रकार कामवाण से विद्ध हुए मन में अमृत के समान सुखप्रद विवेक भी
क्षणभर के लिये स्थित नहीं रहता।

हरिहरपितामहाद्या बलिनोऽपि तथा स्मरेण विधस्ताः

त्यक्तत्रयाः यथैते स्वाङ्गान्नार्ण न मुच्यन्ति ॥ 46 ॥

विष्णु, महादेव और ब्रह्मा आदि ब्रह्मशाली जन भी इस कामदेव के द्वारा इस
प्रकार से नष्ट किये गये हैं कि जिससे ये निर्लञ्ज होकर स्त्री को अपनी गोद से
नहीं छोड़ते हैं।

ब्रह्मा भी काम से भ्रष्ट हुए

एक दिन ब्रह्माजी के मन में आया कि मैं इन्द्रादिकों का पद छीनकर सर्वश्रेष्ठ हो जाऊँ और इसके लिये उन्होंने एक भयंकर वन में हाथ ऊँचा किये बड़ी धोर तपस्या की। वे कोई साढ़े चार हजार वर्ष पर्यन्त (यह वर्ष संख्या देवों के वर्ष के हिसाब से है। जो कि मनुष्यों के वर्षों से कई गुणी होती है।) एक ही पाँव से खड़े रहकर तप करते रहे और केवल वायु का आहार करते रहे। ब्रह्माजी की यह कठिन तपस्या निष्फल न गई। इन्द्रादिकों का आसन हिल गया। उन्हें अपने राज्य नष्ट होने का बड़ा भय हुआ। तब उन्होंने ब्रह्माजी को तपभ्रष्ट करनेके लिये स्वर्ग की एक तिलोत्तमा नाम की वेश्या को, जो कि गन्धर्व देवों के समान गाने और बड़ी सुन्दर नाचने वाली थी, भेजा। तिलोत्तमा उनके पास आई और अनेक प्रकार के हाव-भाव-विलास बतला-बतलाकर नाचने लगी। तिलोत्तमा का नृत्य, तिलोत्तमा की भुवन मनोहारिणी रूपराशी और उसका हाथ-भाव-विलास देखकर ब्रह्माजी तप से डगमगा गये। उन्होंने हजारों वर्षों की तपस्या को एक क्षण भर में नष्ट कर अपने को काम के हाथ सौंप दिया। वे आंखें फाड़-फाड़कर तिलोत्तमा की रूपराशि को बड़े चाव से देखने लगे। तिलोत्तमा ने जब देखा कि योगी-राज अब अपने आप में नहीं हैं और आंखें फाड़-फाड़कर मेरी ही ओर देख रहे हैं, तब उनकी इच्छा को और जागृत करने के लिये वह उनकी बायीं ओर आकर नाचने लगी, ब्रह्माजी ने तब अपनी हजारों वर्षों की तपस्या के प्रभाव से अपना दूसरा मुँह बाँधी और बना लिया। तिलोत्तमा जब उनकी पीठ पीछे आकर नाचने लगी। ब्रह्माजी ने तब तीसरा मुँह पीछे की ओर बना लिया। तिलोत्तमा फिर उनकी दाहिनी ओर जाकर नाचने लगी, ब्रह्माजी ने उस ओर भी मुँह बना लिया। अन्त में तिलोत्तमा आकाश में जाकर नाचने लगी। तब ब्रह्माजी ने अपना पाँचवाँ मुँह गधे के मुख के आकार का बनाया। कारण अब उनकी तपस्या का फल बहुत थोड़ा बच रहा था। मतलब यह कि तिलोत्तमा ने जिस-जिस प्रकार ब्रह्माजी को नचाया वे उसी प्रकार नाचे। इस प्रकार उन्हें तप से भ्रष्ट कर और उनके हृदय में काम की आग धधकाकर चालाक तिलोत्तमा अछूती की अछूती स्वर्ग को चली गई और बेचारे ब्रह्माजी काम के तीव्रवेग से मूर्छित होकर पृथ्वी पर आ गिरे। तिलोत्तमा ने सब हात इन्द्र से कहकर कहा— प्रभो

अब आप अनन्त काल तक सुख से रहें। मैं ब्रह्माजी की खूब ही गति बना आइ हूँ, तब इन्द्र ने बहुत खुश होकर उससे पूछा— हाँ तिलोत्तमा, तू ब्रह्माजी के पास ठहरी नहीं? तिलोत्तमा बोली— वाह! प्रभो, भला उस बृद्धे की ओर मेरी आपने जोड़ी मिलाई। मैं तो उसके पास खड़ी तक नहीं रह सकी। यह सुन इन्द्र को ब्रह्माजी की हालत पर बड़ी दया आई। उसने फिर दया के वश होकर ब्रह्माजी की शान्ति के लिए उर्वशी नाम की एक दूसरी सुन्दर वेश्या को उनके पास भेजा। इन्द्र की आज्ञा सिर पर चढ़ाकर उर्वशी ब्रह्माजी के पास आई। उनके पाँवों को मूँकर उन्हें उसने सचेत किया। ब्रह्माजी पाँव तले एक स्वर्गीय सुन्दरी को बैठी देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें मानो आज उनकी तपस्या का फल मिल गया। ब्रह्माजी अब घर बनाकर उर्वशी के साथ रहने लगे और मनमाने भोग भोगने लगे, तब वे लौकिक ब्रह्मा कहलाने लगे।

काम से भ्रष्ट सात्यकि और रुद्र

गन्धार देश में महेश्वरपुर एक सुन्दर शहर था। इसके राजा सत्यन्धर थे। सत्यन्धर की प्रिया का नाम सत्यवती था। इनका एक पुत्र हुआ। उसका नाम सत्याधिक था। सत्याधिक ने राज विद्या में अच्छी कुशलता प्राप्त की थी और ठीक भी है, राजा बिना राजविद्या के शोभा भी नहीं पाता।

इस समय सिन्धु देश की विशाल नगरी का राजा चेटक था। चेटक जैनधर्म का पालक और जिनेन्द्र भगवान का सद्या भक्त था। इसकी रानी का नाम सुभद्रा था। सुभद्रा बड़ी पवित्र और धर्मात्मा थी। इसकी सात कन्याएँ थीं। उनके नाम थे—पवित्रा, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, जेष्ठा और चन्दना।

सम्राट् श्रेणिक ने चेटक से चेलिनी के लिए मँगनी माँगी थी पर चेटक ने उसकी आयु अधिक देखकर लड़की देने से इन्कार कर दिया। इससे श्रेणिक को बहुत बुरा लगा। अपने पिता के दुःख का कारण जानकर अभयकुमार उनका एक बहुत ही बढ़िया चित्र बनवाकर विशाल नगरी में पहुँचा। उसने वह चित्र चेलिनी को दिखाकर उसे श्रेणिक पर मुग्ध कर लिया। पर चेलिनी के पिता को उसका ब्याह श्रेणिक से करना सम्मत नहीं था। इसलिए अभयकुमार ने गुप्त मार्ग से चेलिनी को ले जाने का विचार किया। जब चेलिनी उसके साथ जाने को तैयार हुई तब ज्येष्ठा ने उससे साथ चलने के लिए कहा। चेलिनी सहमत तो हो गई पर उसे

उसको ले जाना इष्ट नहीं था, इसलिए जब ये दोनों बहिनें थोड़ी दूर गई कि धृता चेलिनी ने भी ज्येष्ठा से कहा—बहिन, मैं अपने आभृषण तो सब महल में ही भूल आई हूँ। तू जाकर उन्हें ले आ न? मैं तब तक यहाँ खड़ी हूँ। बेचारी भोली ज्येष्ठा उसके झाँसे में आकर चली गई। वह थोड़ी दूर ही पहुँची होगी कि चेलना ने आगे का रास्ता पकड़ा और जब ज्येष्ठा संकेत स्थान पर लौटकर आती है तब तक यह बहुत दूर आगे बढ़ गई। अपनी बहिन की इस कुटिलता या धोखे बाजी से ज्येष्ठा को बेहद दुःख हुआ और इसी दुःख के मारे वह यशस्वी आर्थिका के पास दीक्षा लेने गई। ज्येष्ठा की सगाई सत्यन्धर के पुत्र सात्यकी से हो चुकी थी पर जब सात्यकि ने उसका दीक्षा ले लेना सुना तो वह भी विरक्त होकर समाधिगुप्त मुनि द्वारा दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

एक दिन यशस्वी, ज्येष्ठा आदि आर्थिकाएँ श्री वर्द्धमान भगवान की वन्दना करने को चली। वे सब एक वन में पहुँची होंगी कि पानी बरसने लगा और खूब बरसा। इससे इस आर्थिका संघ को बड़ा-कष्ट हुआ। कोई किधर और कोई किधर इस तरह उनका सब संघ तिर-बितर हो गया। ज्येष्ठा एक काल नाम की गुहा में पहुँची। वहाँ उसने एकान्त समझकर शरीर से भीगे वस्त्रों को उतारकर उन्हें निचोड़ने लगी। संयोग से सात्यकि मुनि भी इसी गुफा में ध्यान कर रहे थे। सो उन्होंने ज्येष्ठा आर्थिका का खुला शरीर देख लिया। देखते ही विकार भावों से उनका मन भ्रष्ट हुआ और उन्होंने अपने शीलरूपी मौलिक रूपों को आर्थिका की शरीर रूपी अग्नि में झोक दिया। सच है काम से अन्धा बना मनुष्य क्या नहीं कर डालता?

गुराणी यशस्वी ज्येष्ठा की चेष्टा वैराह से उसकी दशा जान गई और इस भय से कि धर्म का अपवाद न हो, वह ज्येष्ठा को चेलिनी के पास छोड़ आई। चेलिनी ने उसे अपने यहाँ गुप्त रीति से रख लिया। सो ठीक ही है सम्बगदृष्टि निन्दा आदि से शासन की सदा रक्षा करते हैं।

नौ महीने होने पर ज्येष्ठा को पुत्र हुआ। पर श्रेणिक ने इस रूप में प्रकट किया कि चेलिनी को पुत्र हुआ। ज्येष्ठा उसे वहाँ रखकर स्वयं आर्थिका के संघ में चली आई और प्रायश्चित लेकर तपस्विनी हो गई। इसका लड़का श्रेणिक के यहाँ पलने लगा। बड़ा होने पर वह और लड़कों के साथ खेलने को जाने लगा। पर संगति

इसकी अच्छे लड़कों के साथ नहीं थी, इससे इसके स्वभाव में कठोरता अधिक आ गई। यह अपने साथ के खेलने वाले लड़कों को रोद्रता के साथ मारने-पीटने लगा। इसकी शिकायत महारानी के पास आने लगी। महारानी को इस पर बढ़ा गुरस्सा आया। उसने इसका ऐसा रौद्र स्वभाव देखकर इसका नाम रुद्र रख दिया। सो ठीक ही है जो वृक्ष जड़ से ही खराब होता है तब उसके फलों में मीठापन भी कहाँ से आ सकता है? इसी तरह रुद्र से एक दिन और कोई अपराध बन पड़ा। सो चेलिनी ने अधिक गुरसे में आकर यह कह डाला कि ‘किसने तो इस दुष्ट को जना और किसे यह कष्ट देता है?’ चेलिनी के मुँह से जिसे कि यह अपनी माता समझता था, ऐसा अचम्भा पैदा करने वाली बात सुनकर बड़े गहरे विचार में पड़ गया। इसने सोचा कि, इसमें कोई कारण जरूर होना चाहिए। यह सोचकर यह श्रेणिक के पास पहुँचा और उसने आग्रह के साथ पूछा—पिताजी! सच बतलाइए, मेरे पिता वास्तव में कौन है? और कहाँ है? श्रेणिक ने इस बात को बताने में बहुत आनाकानी की पर जब रुद्र ने बहुत ही आग्रह किया और किसी तरह वह नहीं माना तब लाचार होकर उन्हें सब सच्ची बात बतानी पड़ी। रुद्र को इससे बड़ा वैराग्य हुआ और अपने पिता के पास जाकर मुनि हो गया।

एक दिन रुद्र ग्यारह अंग और दश पूर्व का बड़े ऊँचे से पाठ कर रहा था। उस समय श्रुतज्ञान के महात्म्य से पाँच सौं कोई बड़ी-बड़ी विद्याएँ और सात सौं छोटी-छोटी विद्याएँ सिद्ध हुई गईं। उन्होंने अपने को स्वीकार करने की रुद्र से प्रार्थना की। रुद्र ने लोभ के वश हो उन्हें स्वीकार तो कर लिया पर लोभ आगे होने वाले सुख और कल्याण के नाश का कारण होता है इसका उसने कुछ विचार नहीं किया।

इस समय सात्यकि मुनि गोकर्ण नाम के पर्वत की ऊँची छोटी पर प्रायः ध्यान किया करते थे। समय गर्मी का था। उनकी वन्दना को अनेक धर्मात्मा भव्यपुरुष आया—जाया करते थे। पर सबसे रुद्र को विद्याएँ सिद्ध हुई तब से वह मुनि वन्दना के लिये आने वाले धर्मात्मा भव्य—पुरुषों को अपने विद्या बल से सिंह, व्याघ्र, गेंडा, चीता आदि हिम्म और भयंकर पशुओं द्वारा डराकर पर्वत पर नहीं जाने देता था। सात्यकि मुनि को जब यह हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने उसे समझाया और ऐसे दुष्ट कार्य करने से रोका। पर इसने उनका कहा नहीं माना और अधिक-

अधिक लोगों को कष्ट देने लगा। सात्यकि ने तब कहा—तेरे इस पाप का फल बहुत बुरा होगा और तेरी तपस्या नष्ट होगी। तृस्त्रियों द्वारा तपभ्रष्ट होकर आखिर मृत्यु का ग्रास बनेगा। इसलिए अभी तुझे सम्भल जाना-चाहिये जिससे कुगतियों के दुःख न भोगने पड़े। रुद्र पर उनके इस कहने का भी कुछ असर न हुआ। वह अपनी दुष्टता करता ही चला गया। सच है पापियों के हृदय में गुरुओं का अच्छा उपदेश कभी नहीं ठहरता।

एक दिन रुद्र मुनि प्रकृति के दृश्यों से अपूर्व मनोहरता धारण किये हुए कैलाश पर्वत पर गया और वहाँ आतापनयोग द्वारा तप करने लगा। इसके बीच में एक और कथा है जिसका इसी से सम्बन्ध है। विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघनिंबन्ध, मेघनिचय और मेघनिदान ऐसे तीन सुन्दर शहर हैं। उसका राजा कनकरथ था। कनकरथ की रानी का नाम मनोहरा था। इसके दो पुत्र हुए। एक देवदारु और दूसरा विद्युजिह्वा। ये दोनों भाई खुबसूरत भी थे और विद्वान भी। इन्हें योग्य देखकर इनके पिता कनकरथ राज्य शासन का भार बड़े पुत्र देवदारु को सौंप कर आप गणधर मुनिराज के पास दीक्षा लेकर योगी बन गया। सबको कल्याण के मार्ग पर लगाना ही उसका एक मात्र कर्तव्य हो गया।

दोनों भाईयों की कुछ दिनों तक तो बनी पर बाद में किसी कारण से बिगड़ पड़ी। उसका फल यह निकला कि छोटे भाई ने राज्य के लोभ में फँसकर अपने बड़े भाई के विरुद्ध षड्यन्त्र रच उसे राज्य से निकाल दिया। देवदारु को अपने मानभंग का बड़ा दुःख हुआ। वह वहाँ से चलकर कैलाश पर्वत पर आया और वहीं पर रहने लगा। सच है, घरेलू झगड़ों से किसे नष्ट नहीं होना पड़ता? देवदारु की आठ कन्याएँ थीं और सभी बड़ी सुन्दर थीं। सो एक दिन ये सब बहिनें मिलकर तालाब पर स्नान करने गईं। अपने सब कपड़ों को उतार कर ये नहाने को जल में घुसी। रुद्र मुनि ने इन्हें खुले शरीर देखा। देखते ही वह काम से पीड़ित होकर इन पर मोहित हो गया। उसने अपनी विद्या द्वारा उनके सब कपड़े छुपा लिये। कन्याएँ जब नहाकर जल से बाहर हुईं तब उन्होंने देखा कपड़े वहाँ नहीं हैं। उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे खड़ी-खड़ी बेचारी लड़ा के मारे सिकुड़ने लगीं और व्याकुल भी अत्यन्त हुईं। इतने में उनकी नजर रुद्र मुनि पर पड़ी। उन्होंने मुनि के पास जाकर बड़े संकोच के साथ पृथा प्रभो, हमारे कपड़े यहाँ ये कौन ले

गया? कृपा करके हमें बतलाइए। सच है, पाप के उदय से आपत्ति आ पड़ने पर लड़ा संकोच सब जाता रहता है। पापी रुद्र मुनि ने निर्लञ्छ होकर उन कन्याओं से कहा—हाँ, मैं तुम्हारे बस्त्र बगैर ह सब बता सकता हूँ, पर इस शर्त पर कि तुम मुझे चाहने लगो। कन्याओं ने तब कहा—हम अबोध ठहरी इसलिए हमें इस बात पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं। हमारे पिताजी यदि इस बात को स्वीकार कर लें तो फिर हमें कोई आपत्ति नहीं होगी। कुलवती बालिकाओं का यह उत्तर देना उचित ही था। उनका उत्तर सुनकर मुनि ने उन्हें उनके बस्त्र बगैर ह दे दिए। उन बालिकाओं ने घर पर आकर यह सब घटना अपने पिता से कह सुनाई। देवदारु ने तब अपने एक विश्वस्त कर्मचारी को मुनि के पास कुछ बातें समझाकर भेजा। उसने जाकर देवदारु की ओर से कहा—आपकी इच्छा देवदारु महाराज को जान पड़ी। उसके उत्तर में उन्होंने यह कहा कि मैं अपनी लड़कियों को अर्पण कर सकता हूँ, यदि, “आप विद्युजिह्वा को मारकर मेरा पिछला राज्य मुझे दिलवा दें।” रुद्र ने स्वीकार कर लिया। सच है कामी पुरुष कौन सा पाप नहीं करता। रुद्र को अपनी इच्छा के अनुकूल देख देवदारु उसे अपने घर पर लिवा लाया। राज्यभ्रष्ट राजा राज्य प्राप्ति के लिए क्या काम नहीं करता?

इसके बाद रुद्र विजयार्द्ध पर्वत पर गया और विद्याओं की सहायता से उसने विद्युजिह्वा को मारकर उसी समय देवदारु को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। राज्य प्राप्ति के बाद हीं देवदारु ने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपनी सब लड़कियों का व्याह आनन्द-उत्सव के साथ उसने रुद्र से कर दिया। इसके सिवाय उसने और भी बहुत सी कन्याओं को उसके साथ व्याह दिया। अब स्त्र बहुत ही कामी हो गया था। उसके इस प्रकार तीव्र काम सेवन का नतीजा यह हुआ कि सैकड़ों बेचारी रांजबालिकाएँ अकाल में ही मर गईं। पर यह पापी तब भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसने अब की बार पार्वती के साथ व्याह किया। उसके द्वारा बहुत तंग आकर पार्वती के पिता तथा और भी बहुत से राजाओं

कामी होने के सिवाय इसे अपनी विद्याओं का भी बड़ा घमण्ड हो गया था। इसने सब राजाओं को विद्या बल से बड़ा कष्ट दे रखा था—बिना ही कारण यह सबको तंग किया करता था और सच भी है—दुष्ट से किसे शान्ति मिल सकती है? इसके द्वारा बहुत तंग आकर पार्वती के पिता तथा और भी बहुत से राजाओं

ने मिलकर इसे मार डालने का विचार किया। पर इसके पास था विद्याओं का बल सो उसके सामने आने की किसी की हिम्मत न पड़ी और पड़ती भी तो वे कुछ कर नहीं सकते थे। तब उन्होंने इस बात का शोध लगाया कि विद्याएँ इससे किस समय अलग रहती हैं। इस उपाय में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि काम सेवन के समय सब विद्याएँ रुद्र से पृथक हो जाती हैं। ऐसा मौका देखकर पार्वती के पिता वगैरह ने खड़ग द्वारा रुद्र को सस्ती मार डाला। सच है पापियों के शत्रु हो जाया करते हैं।

विद्याएँ अपने स्वामी की मृत्यु देखकर बड़ी दुःखी हुई और साथ ही उन्हें क्रोध भी अत्यन्त आया। उन्होंने तब प्रजा को दुःख देना शुरू किया और अनेक प्रकार की बीमारियाँ प्रजा में फैला दीं। उससे बेचारी गरीब प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। इसी समय एक ज्ञानी मुनि इस ओर आ निकले। प्रजा के कुछ लोगों ने जाकर मुनि से इस उपद्रव का कारण और उपाय पूछा। मुनि ने सब कथा कहकर कहा—जिस अवस्था में रुद्र मारा गया है उसकी एक बार स्थापना करके उससे क्षमा कराओ वैसा ही किया। प्रजा का उपद्रव शान्त हुआ पर तब भी लोगों की मूर्खता देखो, जो एक बार कोई काम किसी कारण को लेकर किया गया सो उसे अब तक भी गड़ेरिया प्रवाह की तरह करते चले आते हैं, और देवता के रूप में उसकी सेवा-पूजा करते हैं, पर यह ठीक नहीं। सद्या देव वही हो सकता है जिसमें राग, विद्याधर, राजा, महाराजा आदि सभी बड़े-बड़े लोग मस्तक झुकाते हैं और ऐसे देव एक अर्हन्त भगवान् ही हैं।

ब्रह्मरूप / स्वात्मरूप में रमण करना / आचरण करना ही यथार्थ से ब्रह्मर्थ है जो कि स्व-शुद्धात्मस्वरूप सच्चिदानन्द मय है। इससे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय एवं वैशिक आदि अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है।

इस कृति में जैन, हिन्दु, बौद्ध, वैज्ञानिक आदि के सिद्धांत समावेश किये गये हैं।

इसमें जो नारी की निन्दा की गई है उसका मुख्य उद्देश्य है अब्रह्मर्थ से विरक्त करना।

अध्याय

3

पुरुष के लिए अद्वितीय अरि-नारि

वैरिधारण दन्ताग्रे समारुह।
वीरश्रीर्यैर्महासत्यैर्योषिद्विस्तेऽपि खण्डितः॥३४॥

जिन अतिशय बलशाली पुरुषों ने शत्रु के हाथी के ढाँत के अग्र भाग पर चढ़कर वीरलक्ष्मी को स्थिर कर दिया है वे भी स्त्रियों के द्वारा खण्डित किये जा चुके हैं—उनको भी स्त्रियों ने अपने वश में कर लिया है।

विषमध्ये सुधास्पन्दं सस्यजातं शिलोद्धये।
संमाध्यं न तु संभाव्यं चेतः स्त्रीणामकश्मलम्॥३९॥

कदाचित् विष के मध्य में अमृत के प्रवाह की तथा शिला समूह के ऊपर धान्य (फसल) के समूह की सम्भावना भले ही की जा सकती हो, परन्तु स्त्रियों के मन में निर्मलता की कभी सम्भावना नहीं की जा सकती है—उनका मन सदा मलिन ही रहता है।

कुलद्वयमहाकक्षं भस्मसात् कुरुते क्षणात्।
दुश्चरित्रसमीरालीप्रदीप्तो वनितानलः॥४१॥

स्त्रीपुरुष अग्नि दुराचरणरूप वायु के समूह से प्रञ्जलित होकर दोनों ही कुलों (मातृवंश तथा पति का वंश) को क्षणभर में भस्म कर देती है।

सुराचल इवाकम्पा अगाधा वार्धिवद् भृशम्।
नीयन्तेऽत्र नराः स्त्रीभिरवधूर्ति क्षणान्तरे॥४२॥

जो मनुष्य सुमेरु के समान निष्कम्प (स्थिर) और समुद्र के समान अतिशय गम्भीर होते हैं उन्हें भी विचलित स्त्रियाँ क्षणभर के भीतर तिरस्कार को प्राप्त करती हैं। अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य अतिशय गम्भीर होते हैं उन्हें भी स्त्रियाँ अपने वश में करके अपमानित किया करती हैं।

वित्तहीनो जरी रोगी दुर्बलः स्थानविच्छुतः
कुलीनाभिरपि स्त्रीभिः सद्यो भर्ता विमुच्यते॥४३॥

यदि पति धनहीन, बृद्ध, रोगी, दुर्बल और स्थान से रहित होता है तो उसे कुलीन स्त्रियाँ भी शीघ्र छोड़ दिया करती हैं। फिर नीच स्त्रियों का तो कहना ही क्या है? यदि वे उसे छोड़ देती हैं तो इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है।

**भेत्तुं शूलमसि षेत्तुं कर्तितुं क्रकचं दृष्टम् ।
नरान् पीडितुं यन्तं वेधसा विहिताः स्त्रियः॥ ४४॥**

ब्रह्मा ने मनुष्यों को खण्डित करने के लिए शूल (अस्त्रविशेष) जैसी, छेदने के लिए तलवार जैसी, काटने के लिए आरी जैसी तथा पेलने के लिए दृढ़ यन्त्र (कोल्ह) जैसी स्त्रियों को रचा है।

(ज्ञानार्थ)

शतकव्रय के रचयिता राजश्री भरुहरि ने अपने स्वयं के अनुभवसे नारियों के बारे में लिखते हुए शृंगारशतक में निम्न प्रकार वर्णन किये हैं—

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः ।

यावदेव न कुरुंगचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः॥ ४९॥

तत्वज्ञानियों का तत्वज्ञान तभी तक प्रकाशित रह सकता है जब तक कि मृगनयनियों के चंचल नेत्र के अंचल की हवा उनको नहीं लगाती।

सन्मार्गेतावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां,

लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।

भूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते ।

यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिवाणाः पतन्ति॥ ५३॥

मनुष्य तभी तक सन्मार्ग में अपने आप को रख सकता है, इन्द्रियों को भी तभी तक वश में रख सकता है, लग्ना और नम्रता भी उसकी तभी तक रह सकती है जब तक वह धैर्य को चुराने वाली कामिनियों के नेत्ररूपी वाणों से आहत नहीं होता।

**उन्मत्तप्रमसंरभादारभन्ते मदंगना ।
तत्र प्रत्यूहमाधतुं ब्रह्मापि खलु कातरः॥ ५४॥**

स्त्रियाँ प्रेम में उन्मत्त होकर जिस काम को करने लग जाती है ब्रह्मा भी उन्हें उम काम से हटा नहीं सकता।

**शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्ववोधोऽपि वाढं,
संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ।
येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्धाट्य,
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्जिकेव ॥ ५६॥**

शास्त्र का ज्ञान रहते हुए भी, नीतिशास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन करने पर भी, विरला ही मनुष्य उनम गति को प्राप्त होता है क्योंकि कामिनी की कुटिल भ्रूलता नरकरूपी नगर के द्वार को खोले हुए बैठती है।

सिद्धाध्यासितकं दरे हरवृषस्कं धावगाढदुमे ।

गंगाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥

कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनम्लानं मनस्वी जनो,

यदित्रस्तफुरंगशावनयना न स्युः स्मरास्त्र स्त्रियः॥ ६०॥

यदि संसार में भगवान् कामदेव का अव्य स्त्रियाँ न होती तो कौन मनस्वी पुरुष पुण्यभूमि हिमालय को, जिसकी कन्द्राओं में सिद्धगण रहा करते हैं, शंकर का बाहन बैल पेड़ों में कन्धा रंगड़ता रहता है और जहाँ के पथर गंगाजल से धुले रहते हैं, छोड़कर औरों के सामने सिर झुकाकर अपने मन को मलिन करता है।

संसार! तव पर्यतपदवी न दवीयसी ।

अन्तरा दुस्तरा न स्वर्यदि ते मदिरेक्षणाः॥ ६१॥

हे मंसार! तुमें पार करने का मार्ग कठिन न होता यदि बीच में कामिनी रूप बाधा न रहती।

सृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्धिनी ।

स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्॥ ६५॥

जो स्त्री स्मरण करने मात्र से मंताप देती है, उन्हें पर पागल बना देती है, स्पृश करने पर मोहित कर देती है, वह प्रिया कैसे हो सकती है?

तावदेवीमृतमयी भावल्लोचनगोचरा ।

चक्षुःपथादपगता विषादप्यतिरिच्यते॥ ६६॥

स्त्री जब तक सामने है तभी तक अमृत के समान आनन्द देता है, आँखों की ओट में हो जाने पर वही विरह के कारण विष से भी अधिक दुःखदायक हो जाती है।

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पतनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
स्वर्गद्वाररम्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरणं,
स्त्रीयन्नं केन सृष्टं विषममृतयंप्राणिनां मोहपाशः॥ 6 8 ॥

प्राणियों के लिए गले के फंडे की तरह विष तथा अमृतरूप इस स्त्रीरूपी चन्द्र को किसने बनाया? जो समस्त संशयों का एकमात्र स्थान, अविनय का घर, साहस का नगर, दोषों का खजाना, सैंकड़ों प्रकार के कपटों और अविश्वासों का खेत, स्वर्ग का विघ्न, नरकपुर का द्वार और हर तरह की माया की पिटारी है।

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम्।

सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी॥ 6 7 ॥

प्रियतमा को छोड़कर न तो कोई अमृत है और न कोई विष पदार्थ ही है, क्योंकि अनुरक्त हो जाने पर प्रियतमा ही अमृतलता के समान आनन्द देती है और वही विरक्त हो जाने पर विष की मंजरी हो जाती है।

सत्यत्वे न शशाङ्क एषं वदनोभूतो न चेन्दीवरद्वन्द्वं,
लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गव्यष्टिः कृता।
किन्त्वेवं कविभिः प्रतारितसनस्तत्वे विजानन्पि,
त्वद् माँसोस्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दोजनः सेवते॥ 6 9 ॥

यदि सचमुच देखा जाये तो स्त्रियों का मुख न तो चन्द्रमां है, न तो इनकी आँखें कमल हैं और न तो इनका देह ही सुवर्ण है, इस यथार्थ वरतु को जानते हुए भी कवियों द्वारा बहकाये हुए मन्दमति पुरुष चाम, माँस और हड्डी से बने हुए स्त्रियों के शरीर का सेवन करते हैं।

जल्पन्ति सार्वमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमः।

हृदये चिन्तयन्त्यत्यप्रियः को नाम योषिताम्॥ 7 1 ॥

स्त्रियों का यथार्थ में कोई प्रिय नहीं है ये किसी से बातें करती हैं तो किसी

और को ही विलास भरी दृष्टि से देखती हैं और हृदय में किसी और को ही चाहा करती है।

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदहालाहलमेवकेवलम्।

अत एव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताङ्यते॥ 7 2 ॥

स्त्रियों की वाणी में मधुर और हृदय में केवल विष रहा करता है, इसलिए इसका अधरपान किया जाता है और हृदय, स्तन मर्दन के बहाने मुट्ठियों से ताड़ित किया जाता है।

अपसरं सखे दुरादस्मात्कटाक्षविषानलात्,

प्रकृति विषमायोषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः।

इतरफणिना दृष्टाः शक्यश्चिकत्सितुमौषधं,

श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तंत्य जन्तिहिमत्रिणाः॥ 7 3 ॥

हे मित्र! कटाक्षरूपी विषाणि को धारण करने वाले स्वभाव में ही भयंकर विलासरूपी फण वाले स्त्रीरूपी सर्प से दूर भागों क्योंकि संसार प्रसिद्ध सर्पों से काटे हुए लोग औषधि से अच्छे किये जा सकते हैं परं स्त्रीरूपी सर्प से काटे लोग अच्छे नहीं किये जा सकते।

विस्तारितं मकरके तनधीवरेण,

स्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ।

येनाचिरात्तदधयमिषलोलमर्त्यं,

मत्स्यान्विकृष्य पचतीत्यनुरागवहनौ॥ 7 4 ॥

इस संसाररूपी समुद्र में कामदेव रूपी केवट ने स्त्रीरूपी जाल को फैलाया है, जिससे वह उसके अधर पल्लवरूपी माँस के लोभी मनुष्यरूपी मछलियों को पकड़कर पेमरूपी अग्नि में पकाया करता है।

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमं।

का सञ्चर मनः तत्रास्ते स्मरतस्करः॥ 7 5 ॥

हे मनर्वी पर्थिक! तृ स्तनरूपी पर्वतों से अति दुर्गम क्रामनियों के शरीररूपी वन में संचार न कर, क्योंकि वहाँ कामरूपी चोर है, जो तुझे लृट लेगा।

वचनसतिलै वासस्वच्छै स्तरं गसयोदैः—
वदनकमलैर्याहो ग्रामः त्रियः सरसी समाः।
इह हि वहवः प्रास्तप्रज्ञास्तेऽपि पिपासवो
विषयविषमग्राहग्रस्ताः पुनर्न समुद्रगताः॥ १२९॥

आत्मानुशासन

Women are like, outwardly inviting, their talk and laughter are pleasant like clear water with waves, their faces are like lotuses. On their banks only many foolish and thirsty (men) have been caught by the terrible crocodile of desire and have never emerged.

वे स्त्रियाँ सरसी (छोटा तालाब) के समान बाह्य से ही रमणीय दिखाई देती हैं—सरसी जिय प्रकार चंचल तरंगों से चुक्त स्वच्छ एवं कमलों से मुशोभित होती है उसी प्रकार वे स्त्रियाँ भी तरंगों के समान चंचल (अस्थिर) सुख को उत्पन्न करने वाली हास्यवुक्त मनोहर वचनों, रूप, जल से तथा मुख रूपी कमलों से रमणीय होती हैं जिस प्रकार बहुत से बुद्धिहीन (मर्ख) प्राणी प्यास से पीड़ित होकर सरोवर पर जाते हैं और किनारे पर ही भयानक हिंसक जल जन्तुओं के ग्रास बनकर उनके द्वारा मरण को प्राप्त होकर फिर नहीं निकल पाते हैं, उसी प्रकार बहुत से अज्ञानी प्राणी भी विषय तृष्णा से व्याकुल होकर उन स्त्रियों के पास पहुँचते हैं और हिंसक जल—जन्तुओं के समान अतिशय भयानक विषयों से ग्रस्त होकर उनमें अतिशय आसक्त होकर फिर नहीं निकलते अर्थात् नरकादि दुर्गतियों में पड़कर फिर उत्तम मनुष्यादि पर्याय को नहीं पाने हैं।

पापिष्ठै र्जगतीविधीतमभितः प्रज्वाल्य रागानलं
कुद्दैरन्द्रियलुध्वकै र्भयपदैः संवासिताः सर्वतः।
हन्ते शरणैषिणो जनमृगाः स्त्री छद्मना निर्मितं।
घातस्थानमुपाश्रयन्ति मदनब्याधिपर्याकुलाः॥ १३०॥

How sad it is that men like deer, desiring for shelter, enter the slaughter-house of cupid, the master hunter, constructed in the form of women, when the world is frightened on all sides by the enraged, terror-strik, and wicked sense-grati-

fication hunters, who have made and kindled the fire of desire all around.

अतिशय पापी, कूर एवं भय को उत्पन्न करने वाले इन्द्रिय रूप अहेरियों (शिकारियों) के द्वारा संसार रूप विधीत (मृग व सिंहादिक के रहने के स्थान) के चारों ओर रागरूप अग्नि को जलाकर सब ओर से पीड़ा को प्राप्त कराये गये ये मनुष्य रूप हिरण रक्षा की इच्छा से व्याकुल होकर स्त्री के झुल से बनाये गये कामरूप व्याधराज (अहेरियों का स्वामी) घात स्थान (मरणस्थान) को प्राप्त होते हैं, यह खेद की बात है।

उतुङ्गसंगतकुचाचलदुर्गदूर

मारादलित्रयसरिद्विषमावतारम्।
रोमावलीकुसृतिमार्गमनङ्गमूढाः कान्ताकटीविवरमेत्य न केऽत्रखिन्ना॥ १३२॥

जो स्त्री की योनि ऊँचे एवं परस्पर मिले हुए स्तनों रूप पर्वतीय दुर्ग से दुर्गम है, पास ही उठर में स्थित त्रिवली रूप नदियों से जहाँ पहुँचना भयप्रद हैं तथा जो रोम पक्तिरूप इधर—उधर भटकाने वाले मार्ग से संयुक्त है, ऐसी उस स्त्री की योनि को पाकर कौन से कामान्ध प्राणी यहाँ खेद को नहीं प्राप्त हुए है? अर्थात् वे सभी दुःख को प्राप्त हुए हैं।

व्यादीर्घेण चलेन वक्तगित्ना तेजस्विन भोगिना

नीलाब्जद्युतिनाऽहिना वरमहं दुष्टो न तच्छुषा।

द्रष्टे सन्त्तिचिकित्सका दिशिदिशि प्रायेण धमार्थिनो

मुण्डाक्षीक्षणवीक्षितस्य न हि मे वैद्यो न चाप्यौषधम्॥ ७६॥

बहुत लम्बे चंचल और टेढ़ी चाल वाले, तेजस्वी सर्प से काटा गया मैं अपने को अच्छा समझता हूँ; किन्तु कामिनी के कटाक्ष से मारा जाना अच्छा नहीं समझता क्योंकि साँप से काटे हुए को बचाने वाले वैद्य प्रायः सभी दिशाओं में मिलते हैं, किन्तु कामिनी के नेत्र से मारे गये को बचाने के लिए न तो कोई वैद्य है और न कोई औषधि ही है।

मिथ्या दृष्टिविषान् वदन्ति फणिनो दृष्टं तदा सुस्फुटं

यासामर्धविलोकनैरपि जगद्दंद्यते सर्वतः।

तास्त्वयेव विलोमवर्तिनि भ्रंश भ्राम्यन्ति बद्धकुधः

स्त्रीरूपेण विषं हि केवलमतस्तद्गोचरं मा स्म गाः॥ २६॥

They wrongly call cobras to be poisonous by sight. When it has been clearly seen that even by half a glance of women the world is wholly burnt out. When thou hast turned away from them, they roam about thee in anger. The only poison is the women, Do not, therefore, apporach the same.

व्यवहारी जन जो सर्पों को दृष्टिविषं कहते हैं, वह असत्य है ? क्योंकि वह दृष्टि विषत्वं तो उन स्त्रियों में स्पष्टतया देखा जाता है जिनके अर्ध विलोकन रूप कटाक्षों के द्वारा ही संसार (प्राणी) सब ओर से अतिशय संतप्त होता है। हे साथो! तू जो उनके विरुद्ध आचरण कर रहा है सो वे तेरे ही विषय में अतिशय क्रोध को प्राप्त होकर इधर-उधर घूम रही हैं। वे स्त्री के रूप में केवल विष ही है। इसलिये तू उनका विषय न बन।

कुद्धाः प्राणहरा भवन्ति भुजगा दष्टैरेव काले क्वचित्
तेषामौषधयश्च सन्ति बहवः सद्यो विषव्युच्छिदः।
हन्युः स्त्री भुजगाः पुरेह च मुहुः कुद्धाः प्रसन्नास्तथा
योगीन्द्रानपि तान् निरौषधविषा दृष्ट्याश्च दृष्ट्वापिच॥

॥127॥अ.शा.

Cobras are deprivers of life, only occasionally, when they bite in rage, there are many remedies which quickly remove their poison. Women-cobras whether in rage or in smile, kill even master ascetics, here and hereafter I again and again say, whether they bite, or are looked at, and by looking or being looked at, and there is no remedy for their poison.

सर्प तो किसी विशेष समय में क्रोधित होते हुए केवल काटकर ही प्राणों का नाश करते हैं तथा वर्तमान में उनके विष को नष्ट करने वाली बहुत-सी औषधियाँ भी हैं परन्तु स्त्रीरूप सर्प क्रोधित होकर तथा प्रसन्न हो करके भी उन प्रसिद्ध महर्षियों को भी इस लोक में और परलोक में भी बार-बार मार सकती हैं। वे जिसकी ओर देखे उसका, तथा जो उनकी ओर देखता है दोनों का ही घात करती है तथा उसके विष को ढूर करने वाली कोई औषधि भी नहीं है।

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जगजीर्णाखिलाङ्गाय च
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च॥

विवेकशील कौन पुरुष ऐसी वेश्याओं में रमण करेगा, जो जन्म से अन्धे, कुम्प, वृद्धावस्था से शिथिल शरीर वाले, गँवार नीच जाति वाले और गलित कुप्त रोग वाले पुरुष को थोड़े से धन के लोभ में अपने मनोरम शरीर को समर्पण कर देती है और सदसंदिवेक को काटने के लिए सजा प्रतुत रहा करती हैं।

वे श्यासो मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।

कामिभिर्यत् हूयन्ते यौवननानि धनानि च ॥ 78 ॥

वह वेश्या सीन्दर्य स्थी ईंधन से प्रछलित कामाग्नि की ज्वाला है, जिसमें क्रामी जन अपने धन और यौवन दोनों का होम किया करते हैं।

कश्चुम्पति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।

चात्भट्चोरचेटकविटनट निटिवनरारावम् ॥ 70 ॥

वेश्याओं का अधर पल्लव जो गुप्त पुरुषों, लड़कों, चोरों, वेश्याओं के ढलालों, जारों और नटों द्वारा चुम्बन से उच्छिष्ट होकर अपवित्र और पीकड़ान की तरह बन चुका है, उसका कौन ऐसा कुलीन व्यक्ति है जो चुम्बन करता हो ?

अजितात्मसु सम्बद्धः समाधिकृतचापलः।

भुजगकुटिलः स्तब्धो भ्रूविक्षेपः खलायते ॥ 89 ॥

इन्द्रियों के आधीन रहने वाले मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाला, समाधि से अधिक चंचल, सर्प के समान कुटिल और अवसर पड़ने पर स्तब्ध रहने वाला, स्त्रियों का कटाक्ष, खल मनुष्यों का आचरण करता है।

संसारऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभुवनदारसेवाकलङ्क-

व्यासङ्गव्यस्तधैर्य कथममलधियो मानसं संविदध्युः।

यदता प्रोद्यदिन्द्रद्यतिनिचयभूतो न स्युरम्मोजनेत्राः।

प्रद्वल्कांचीकलापाः स्तनभरविनयन्मध्यभागात्तरुण्यः॥94॥

इस निष्ठन्त्र संसार में निर्मल विचार करने वाले लोग भी अधीर चित्त होकर दुष्ट राजा त्रा को मेवा में कैसे उपास्थित होते यदि उठीयमान चन्द्रमा की कीर्ति के समान तथा कमना गद्यश्य नेत्रवाली, स्तनों के भार से कुछ-कुछ झुके हुए मध्यमान वाली स्त्रियाँ न होतीं।

उन्मीलत्रिवलीतरं गनिलया प्रोत्तुं गपीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुना वपत्राम्बुजोद्भासिनी।
कान्ताकारधरा नदीयमभितः वूराऽत्रनापेक्षते।
संसारार्णवमञ्जनं यदि ततोद्वैरेण संत्यज्यतम् ॥ ११ ॥

यदि संसार रूपो समुद्र में रान करना नहीं चाहते हो तो स्त्री रूप नदी को दूर से त्याग दो, जिसमें उदर की त्रिवली ही लहरें हैं, पुष्ट और उमड़े हुए दोनों स्तन ही चक्रवाक हैं और मगर घड़ियाल आदि क्रूर जीव रहा करते हैं।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुल श्रोणीभरे त्युत्सुफः
पीनोतुं गपथोधरे ति सुमुखान्भोजेति सुभ्रिति।
दृष्ट्वा मायति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति जानन्नपि
प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ॥ ११ ॥

कान्ता का मुखकमल पूर्णचन्द्र की कांति को हरने वाला है जीसके अधरों में अमृत रहा करता है परन्तु वही अमृत, जवानी ढल जाने पर मटार के फल के समान नीरस और विष की तरह दुःखदायी होता है।

विद्रान पुरुष, स्त्री को अपवित्रता की पुतली जानते हुये भी उसे देखकर उन्मत होता है, आनंदित होता है, प्रेम करता है और कमल के समान नेत्र वाली बड़े-बड़े नितम्ब वाली उभरे हुए पुष्ट स्तनों वाली सुन्दर भौंहों वाली आदि कह-कह कर सुन्ति किया करता है।

स्तनो माँसग्रन्थो कनक कलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि शशाङ्केन तु लितम् ।
स्तग्वन्मूत्रकिलनं करिवरकरस्पर्धिजघनमधो
निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुरुकृतम् ॥ १२ ॥

(पृ. 35 भ्रत्तरिशतक)

माँस के लोधड़े रूपों स्तनों को सुर्वण के कलशों की उपमा दी, खखार और थूक के पात्र मुख कि चन्द्रमा से तुलना कि, टपकते हुए मृत्र से भीगी जंधा को गजेन्द्र के सूँड की उपमा दी, इस तरह स्त्रियों के निंद्य रूप को कवियों ने कैसा विद्वाकर कहा, आश्चर्य है।

विरमत वृथा योषित्सङ्गात्सुखात्क्षणभंगुरात्कुरुत
करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम्—
न खलु नरके हाराकान्तं धनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रेणीविम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ १२ ॥

(वि.श.पृ. 11)

हे विद्वानो! अग्र मात्र के सुख देने वाली स्त्री समागम से अपने मन को हटा लो। करुणा(दुखियों में उद्या करना) मैत्री(पुण्यवानों में मैत्री) और प्रज्ञामूर्धी स्त्रियों से गंगम करो। क्योंकि अन्त में नरक में जाने पर मुक्ताहार से सुशोभित पुष्ट रूप स्तन मण्डल अथवा शब्दायमान मणिमेखला करधनी वाला नितम्ब मण्डल रक्षा कर सकेगा।

वचोगृहं विषयिणां मदनायुधस्य
नाडीव्रणं विषमनिवृत्तिपर्वतस्य।
प्रच्छन्नपादुकमनङ्गमहाहिरध्रमाहु
र्वृधाः जघनरन्ध्रमदः सुदत्या ॥ १३ ॥

सुन्दर दाँतों वाली स्त्री का यह जो जांघों के बीच में स्थित छिद्र है उसे पाणि जन कार्मा पुरुषों के मल (वीर्य) का द्वार, कामदेव के शस्त्र का नाडीव्रण अर्थात् नस के ऊपर (उत्पन्न हुआ) धाव, दुर्गम मोक्षरूप पर्वत का ढका हुआ गड़दा तथा कामरूप महारूप का छिद्र(बांधी) बतलाते हैं।

त्वङ् मांससुधिर स्नायुमज्जामेदोऽस्थिसंहतौ।
विष्मुत्रपये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥
कव शरीरमशेषाणां श्लेषमादीनां महाचयः।
कव चाङ्गशोभासौभाग्यकमनीयादयो गुणाः॥
मांसासृक्पूयविष्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ।
देहे चेत्रीतिर्मान्मृदो भविता नरकेऽपि सः॥
स्त्रीणामवाच्यदेशस्य किलननाडीवणस्य च।
अभेदेऽपि मनोभेदाज्ञनः प्रायेण वज्च्यते ॥

चर्मखण्डं दिधा भिन्नमपानोदनारधुपितम् ॥
ये रमन्ति नमस्तेभ्यः साहसं किमतः परम् ॥

मांस, रक्त, चर्म, नाडी, मेड, मग्ना और अरिथ आदि से निर्मित शरीर में रमण करने वाले मनुष्यों और मलमूत्र आदि में निवास करने वाले कीड़ों में ही क्या अन्तर रहता है? यह शरीर तो कफ आदि वृणोत्पादक वस्तुओं का भण्डार है। कहाँ ऐसा यह शरीर और कहाँ सुन्दरना, क्रमनीवता तथा अंग की शोभा! फिर भी मनुष्य वृणित पदार्थों के भण्डार रूप इस देह से प्रेम करता है, उसका प्रेम नरक में भी होगा ही। स्त्रियों के न करने योग्य अंगों और सड़े नारीब्रण में कोई अन्तर न होने पर भी मनुष्य अपने मानसिक भ्रम के कारण ही ठगा हुआ है। स्त्रियों का अंग दुर्गन्ध से भरा हुआ है। उसमें रहने वाले मनुष्यों को नमस्कार है क्योंकि यह तो घोर दुःसाहस ही है।

मांसपाञ्चालिकामास्तु मन्त्रलोलेऽङ्गपं जरे ।
स्नायस्थिग्रन्थिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ॥
त्वङ् मांसरक्तवाष्पाम्बुपृथक् कृत्वा विलोचने ।
समालोक्य रम्यं चेत् किं मुधा परिमुष्यसि ॥

(पृ. 16/अ.)

मांस की बनी इस चलने-फिरने वाली पिटारीरूप स्त्री के शरीर में जिसमें कि नरें, हड्डी, ग्रन्थियाँ ही हैं, क्या ये वस्तु सुन्दर हैं? जरा इसकी चमड़ी, मांस, खून, आँसू और आँखें अलग-अलग करके (अर्थात् काट-छाँट करके) तो देखो क्या वह सुन्दर लगता है? यदि नहीं तो फिर क्यों इस पर इतने मुश्य हो जाते हों?

मेरु शृंगतोल्लासिंगं गाजलर थोपमा ।
इष्टायस्मिन्मुने मुहमाहारस्योल्लासशालिनः ॥
स्मशानेषु दिग्न्तेषु स एव ललनास्तनः ।
श्वभिरास्वाधते काले लघु पिण्ड इवान्धनः ॥
केशकञ्जलधारिण्यो दुःस्यर्शा लोचनप्रियाः ।
दुष्कृतग्निशिखा नार्योदहन्ति तृणवन्नस्म ॥
ज्वलिता अतिदूरेऽपि जरसा अपि नीरसाः ।

स्त्रियो हि नरकानीनानामिन्धनं चारुदारुणम् ॥
कामनाम्ना किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसः ।
नार्यो नरविहंगानामंगवन्धनवागुराः ॥(20)

जिसके स्तनों पर लटकने वाले हार को मेरु पर्वत के शिखरों के मध्य से गिरने वाली गङ्गाधारा की उपमा यी जाती है, क्या वैसे दिखता है? श्मशान तथा इधर-उधर अन्यत्र कटकर गिरा हुआ वही स्त्री का स्तन समय आने पर कुन्तों के द्वारा इसी प्रकार खाया जाता हुआ दिखता है जैसे एक साधारण अन्न का टुकड़ा। ये सुन्दर काढ़े वालों तथा (बड़ी-बड़ी आँखों में) काजल को लगाने वाली खराब स्पर्श वाली आँखों को अच्छी लगने वाली भयानक आग की शिखा के समान जो स्त्रियाँ हैं वे पुरुष को तिनके के समान क्षण भर में दाध कर देती हैं। (जला देती हैं)। ये स्त्रियाँ बहुत ही दूर से भी जला देने वाली अत्यन्त रसीली लगती हुई भी नीरस - रसहीन कर देने वाली स्त्रियाँ, नरक की आग की लकड़ियाँ हैं जो कि चारुदारुण (सुन्दर होने पर भी भयानक) हैं। कामदेवरूपी बहेलियों ने मनुष्य रूपी परक्षियों को फँसाने के लिये स्त्री रूपी हृदय को मोहित कर देने वाली बन्धन बागुरा जालपाश बिछा रखी हैं।

जन्मपल्लवमत्स्यानांचित्तकर्दमचारिणाम् । (उप. 46 2 पृ.)
पुसां दुर्वासनारञ्जुनीरी वाडिशपिण्डता ॥
सर्वेषां दोषरत्नानां सुसनुदूगिकमानया ।
दुखशृङ्खलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥
यस्ये स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्वभोगभूः ।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगस्त्यक्त्वा को नरो न सुखी भवेत् ॥

जन्म रूपी तलैया में रहने वाले मछली स्वरूप, हृदय रूपी (कलुषित हृदय रूपी) कीचड़ में चलने वाले मनुष्य रूपी मछलियों के लिए दुर्वासन रूपी रसी में बैधी ये स्त्रियाँ मछली पकड़ने के काटी की तरह हैं। सभी प्रकार के बड़े-बड़े दोषोंकी पिटारी स्वरूप इन दुःखों को जज्जीरमय स्त्री से तो भगवान बचाये। जिसकी स्त्री ही नहीं वह कहाँ भोगे? यदि कोई स्त्री को छोड़ दे तो समझो उसने संसार को ही छोड़ दिया तथा संसार छोड़ देने पर तो हरेक सुखी हो जाता है।

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्ये ॥१॥

न पाणिपाद चपलो न नेत्रचपलो यतिः।

न च वाक्चपलश्रैव ब्रह्मभूतो जितेन्द्रियः॥

यति को हाथ, पाँव, आँखों, वाणी का संसर्ग सी होना चाहिए अर्थात् पूर्ण जितेन्द्रिय होना चाहिये, तभी वह ब्रह्मचारी हो सकता है। (उपनिषद्)

स्त्री संसर्ग कामाग्नि उद्दीपक—

विरज्याशेषसंगेभ्यो यो वृणीते शिवशियम्।

स कुद्धाहेरिव स्त्रीणां संसर्गाद्विनिवर्तते।(7261)

जो समस्त परिग्रह से रहित होकर मुक्तिमूली का वरण करता है वह प्रचण्ड सर्प के समान भयानक स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहता है।

यथा सद्यो विदार्यन्ते गिरयो वज्रताडिताः।

तथा मत्ताङ्गनापाङ्गप्रहारे णात्प चेतसः॥२॥

जिस प्रकार वज्र से ताडित होकर पर्वत शीघ्र नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मट से उम्मत स्त्रियों के कटाक्षों के प्रहार से मन्द बुद्धि जन भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।

यस्तपस्वी व्रती मौनी संवृतात्मा जितेन्द्रियः।

कलङ्घयति निशङ्कः स्त्रीसखः सोऽपि संयमम्॥ ३॥

जो तपश्चरण में तत्पर है, व्रतों का परिपालन करता है, मौन को धारण करता है, सावध प्रवृत्ति से रहित है तथा इन्द्रियों को वश में रखता है, वह भी निर्भय होकर स्त्री के अनुराग से संयोग को कलंकित कर डालता है।

मासे मासे व्यतिक्रान्ते यः पिवत्यम्बु केवलम्।

विमुद्यति नरः सोऽपि संगासाद्य सुभ्रुवः॥ ४॥

जो मनुष्य एक-एक माह बीत जाने पर केवल जल को पीता है- महीने महीने का उपवास करके पारणा के समय केवल जल को ही ग्रहण करता है- वह भी स्त्री के संयोग को पाकर मोहित हो जाता है।

सर्वत्राप्युपचीयन्ते संयमाद्यास्तपस्विनाम्।

गुणाः किनवङ्गनासंर्गं प्राय यान्ति क्षय क्षणात्॥ ५॥

तर्पार्थयों के संयम आठि गुण सर्वत्र वृद्धि को प्राप्त होते हैं। परन्तु स्त्री के

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्ये ॥२॥

संयोग को पाकर वे क्षण भर में ही नष्ट हो जाने हैं।

संचरन्ति जगत्यस्मिन् स्वेच्छया यमिनां गुणाः।

विलीयन्ते पुनर्नारीवदनेन्दु विलोकनात्॥ ६॥

संयमी जनों के गुण इस लोक में इच्छानुसार सर्वत्र संचार करते हैं परन्तु वे स्त्री के मुखरूप चन्द्र के दर्शन से नाश को प्राप्त होते हैं।

तावद्धते मुनिः स्थैर्यं श्रुतं शीलं कुलऋपम्।

यावन्मत्ताङ्गनानेत्र वागुराभिर्न रुध्यते॥ ७॥

मुनि रिथरता (दृढ़ता) श्रुत, शील और कुल की परम्परा को तब तक ही धारण करता है जब तक कि वह उम्मत स्त्री के नेंद्रों स्वयं बन्धन से नहीं रोका जाता है।

नवनीतनिभं पुंसां मनः सद्यो विलीयते।

वनितावन्हि संतप्तं सतामपि न संशयः॥ ८॥

इसमें सन्देह नहीं है कि सञ्चन पुरुषों का भी मन स्त्री रूप अग्नि के संयोग से सन्ताप होकर मक्खन के समान शीघ्र ही पिघल जाता है।

अन्तः सुप्तोऽपि जागर्ति स्मरः संगेन योषिताम्।

रोगव्रज इवापथ्य सेवा संभावितात्मनाम्॥ ९॥

भीतर सोया हुआ काम स्त्री के संसर्ग से इस प्रकार जाग उठता है जिस प्रकार कि अपथ्य भोजन का सेवन करने वाले मनुष्यों का रोग समृद्ध जाग उठता है।

क्रियते यैर्मनः स्वस्थं श्रुतप्रशम संयमैः।

तेऽपि संसर्गमासाद्य वनितानां क्षयं गताः॥ १०॥

जिन महापुरुषों ने श्रुत, प्रशम और संयम के द्वारा अपने मन को अपनी आत्मा में स्थिर कर लिया है वे भी स्त्रियों की संगति को पाकर नाश को प्राप्त होते हैं।

पुस्तोपल विनिष्पन्नं दारुचित्रादि कल्पितम्।

अपि वीक्ष्य वपुः स्त्रीणां मुहृत्यज्ञी न संशयः॥ १५॥

लेघ कर्म और पत्थर से निर्मित हुआ तथा लकड़ी से और चित्र आदि के रूप में रचे गये भी स्त्रियों के शरीर (आकार) को देखकर प्राणी मोहित हो जाया करता है इसमें सन्देह नहीं है।

ब्रह्मचर्य नष्ट का क्रम-

द्विष्टपातो भवेत्पूर्वं व्यामुह्यति ततो मनः।
प्रणिधत्ते जनः पश्चात्तकथागुणकीर्तने॥ १६॥

प्रथमतः स्त्री के ऊपर दृष्टि (निगाह) पड़ती है पश्चात् उसके विषय में मन व्यामोह को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् मनुष्य उसकी वार्ता और गुणों के कीर्तन में उपयोग लगाता है।

ततः प्रेमानुबन्धः स्यादुभयोरपि निर्भरम्।
उत्कण्ठते ततश्चेतः प्रेमकाष्ठा प्रतिष्ठितम्॥ १७॥

फिर दोनों में प्रेम का सम्बन्ध हो जाता है पश्चात् मन उस प्रेम की अन्तिम सीमा पर रिथत होकर उत्कण्ठता को प्राप्त होता है।

दानदक्षिण्य विश्वाससैरुभयोर्वर्धते स्मरः।
ततः शाखोपशाखाभिः प्रीतिवल्ली विसर्पति॥ १८॥

इसके पश्चात् उन दोनों में दान दक्षिण्य (उदारता या सरलता) और विश्वास के द्वारा काम की वासना वृद्धिंगत होती है। पश्चात् प्रीतिरूप वेल शाखा और उपशाखाओं से विस्तार को प्राप्त होती है।

मनो मिलतिचान्योन्यं निःशङ्कं संगलालसम्।
प्रणश्यति ततो लज्जा प्रेम प्रसर पीडिता॥ १९॥

पश्चात् संयोग के लिये उत्सुक हुआ मन निर्भय होकर परस्पर में मिल जाता है। तत्पश्चात् प्रेम के विस्तार से पीड़ित होकर दोनों की लज्जा नष्ट हो जाती है।

निःशङ्कीकुरुते नर्म रहोजल्पावलभित्।
वीक्षणादीन्धनोद्भुतः केनामाचिः प्रविश्रुम्भते॥ २०॥

फिर परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि रूप ईन्धन उत्पन्न हुई कामरूप अग्नि वृद्धिंगत होती है। तब प्राणी निर्भय होकर एकान्त में प्रेम भाषणादि के आश्रित क्रीड़ करता है।

बहिरन्तस्ततस्तेन दद्यमानोऽग्निना भृशम्।
अविचार्य जनः शीघ्रं ततः पापे प्रवर्तते॥ २१॥

अन्त में मनुष्य उस कामग्नि से बाहर और अन्तरंग में अतिशय सन्तप्त होता हुआ विवेक वृद्धि को नष्ट करके शीघ्र ही पाप में प्रवृत्त हो जाता है।

श्रुतं सत्यं तपः शीलं विज्ञानं वृत्तमुन्नतम्।
ईन्धनीकुरुते मूढः प्रविशय वनिताजले॥ २२॥

इस प्रकार से मूर्ख मनुष्य स्त्री रूप अग्नि में प्रविष्ट होकर वहाँ आगम ज्ञान सत्य, शील तप, विज्ञान और उन्नत चारित्र को ईंधन बना डालता है—उन्हें भरम कर देता है।

स्त्री संसर्ग सर्वथा दोषकर-

संसर्गप्रभवा नूनं गुणाः दोषाश्च देहिनाम्।
एकान्ततः स दोषाय स्त्रीभिः सार्थ विवर्धितः॥ २४॥

प्राणियों के गुण और दोष नियमतः संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। परन्तु स्त्रियों के साथ बढ़ाया गया वह संसर्ग सर्वथा दोष के लिये ही होता है अभिप्रायः यह है कि अन्य जन की संगति से तो कुछ गुण और दोष दोनों ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु स्त्रियों कि संगति से केवल दोष ही उत्पन्न होते हैं।

पुण्यानुष्ठान संभूतं महत्वं क्षीयते नृणाम्।
सद्यः कलङ्घयते वृत्तं साहचर्येण योषिताम्॥ २५॥

पवित्र अनुष्ठान से, सदाचरण से उत्पन्न हुआ मनुष्यों का माहात्म्य स्त्रियों की संगति से नष्ट हो जाता है तथा उससे उनका चारित्र शीघ्र ही दूषित हो जाता है।

अपवाद महापङ्के निमज्जन्ति न संशयः
यमिनोऽपि जगद्वन्धवृत्ता रामास्पदं श्रिताः॥ २६॥

जिन संयमीजनों का चरित्र लोक में वन्दना करने के योग्य होता है वे भी स्त्री रूप स्थान का आश्रय पाकर निन्दारूप गहरे कीचड़ के भीतर ढूब जाते हैं।

अनन्तमहिमाकीर्णं प्रोतुङ्गं वृत्तापादपम्।
वामाकुठार धारेयं विच्छिन्त्याशु देहिनाम्॥ २७॥

प्राणियों का जो उन्नत चारित्र रूप वृक्ष अपरिमित महिमासे व्याप्त होता है उसे यह स्त्री रूप कुठार (फरसा) की धारा शीघ्र ही छिन भिन्न कर डालती है।

एकत्र वसति साध्वी वरं व्याघ्रोरगैः सह।
पिशाचैर्वा न नारीभिर्निमेषमपि शस्यते॥ ३०॥

व्याघ्र, सर्प अथवा पिशाचों के साथ एक स्थान पर रहना अच्छा है। परन्तु स्त्रियों

के साथ एक स्थान पर क्षणभर रहना भी निवन्धनीय है, अच्छा नहीं है।

ब्रह्मचर्यच्युत सद्यो महानप्यवमन्यते ।
सर्वैरपि जनैर्लोके विद्यात इव पावकः॥ ३३॥

ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हुआ महान् पुरुष भी लोक में सभी जनों के द्वारा बुझी हुई अग्नि के समान शीश ही अपमानित होता है।

विशुध्यति जगद्येषौ स्वीकृतं पादपांसुभिः।
वर्ज्यता वहुशस्तेऽपि वनितापाङ्ग वीक्षणात्॥ ३४॥

जिन महर्षियों के पैरों की धूलि को स्वीकार करके जगत विशुद्ध होता है वे भी प्रायः स्त्रियों के कटाक्षों के देखने से ठगे गये हैं।

यासां सीमन्तिनीनां कुरवकतिलकाशोकमाकन्दवृक्षाः।
प्राप्योद्दौर्विक्रियन्ते ललितभुजलतालिङ्गनादीन् विलासान्
तासां पूर्णेन्दुगौरं मुखकमलमलं वीक्ष्य लीलारसाढ्यं।
को योगी यस्तदानीं कलयति कुशलो मानसंनिर्विकारम्॥३८॥

जिन स्त्रियों की सुन्दर भुजारूपी लता के आलिंगन आदि विलासों को पाकर कुरवक, तिलक, अशोक और आम्रवृक्ष अतिशय विकार को प्राप्त होते हैं—विकसित हो जाते हैं—उनके पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान गोरे और लीलारस से परिपूर्ण मुखरूप कमल को देखकर वह कौन—सा कुशल योगी है जो उस समय अपने मन को विकार से रहित प्रगट कर सकता हो? अभिप्राय यह है कि जो वृक्ष लोक में तुच्छ गिने जाते हैं वे भी जब स्त्रियों के संसर्ग से विकार को प्राप्त होते हुए देखे जाते हैं तब भला विशेष चतुर समझे जाने वाले मनुष्य तो उनके संसर्ग से विकार को प्राप्त होंगे ही।

ब्रह्मचर्य विशुद्ध्यर्थं संगः स्त्रीणां न केवलम्।
त्याज्यः पुंसामपि प्रायो विटविद्यावलम्बिनाम्॥ ४३॥

ब्रह्मचर्य व्रत को निर्मल रखने के लिए केवल स्त्रियों के ही संसर्ग का परित्याग करना आवश्यक नहीं है बल्कि काम कला का आलम्बन करने वाले दुराचारियों के भी संसर्ग का परित्याग करना आवश्यक है।

मदान्धैः कामुकैः पापैर्वज्चकैर्मार्गं विच्युतैः।

स्तवधलुव्याधमैः सार्धं संगो लोकद्यान्तकः॥ ४४॥

जो मद से अन्धे हो रहे हैं विषयी हैं, पापी हैं, धूर्त हैं, सन्मार्ग से भ्रष्ट हैं अभिमानी हैं, लोभी हैं और निकृष्ट आचरण करने वाले हैं। उनके साथ किया गया संसर्ग दोनों ही नष्ट करने वाला होता है। शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव पृ. 269)

कण्ठस्थः कालकूटोऽपि शम्भोः किमपि नाकरोत्।

सोऽपि दंदह्यते स्त्रीभिः स्त्रियो हि विषमं विषम्॥ १३५॥

जिस महादेव के कण्ठ में स्थित हो करके भी विष ने उनका कुछ भी अहित नहीं किया वही महादेव स्त्रियों के द्वारा संतप्त किया जाता है। ठीक है—स्त्रियाँ भयानक विष है।

तव युवति शरीरे सर्वदोषैकपात्रे
रतिरमृत मूयखाद्यर्थं साधम्यतश्चेत्।
ननु शुचिषु शुभेषु प्रीतिरेष्वेव साध्वी
मदनमधुमदान्धे प्रायशः को विवेकः॥ १३६॥

हे भव्य सब दोषों के अद्वितीय स्थानभूत स्त्री के शरीर में यदि चन्द्र आदि पदार्थों के साधम्य (समानता) से तेरा अनुराग है तो फिर निर्मल और उत्तम इन्हीं (चन्द्रादि) पदार्थों के विषय में अनुराग करना श्रेष्ठ है। परन्तु कामरूप मद्य के मद (नशा) से अन्धे हुए प्राणी में प्रायः वह विवेक ही कहाँ होता है, अर्थात् उसमें वह विवेक ही नहीं होता है।

(आत्मानुशासन/गुणभद्राचार्य)

‘कुलटा स्त्री की दुष्टता’

अयोध्या नगरी के राजा देवरति थे। उनकी रानी का नाम रक्ता था। वह बहुत सुन्दर थी। राजा सदा उसी के नाड में लगे रहते थे। वे बड़े विषयी थे। शत्रु बाहर से आकर आक्रमण करते, उसकी भी उन्हें कुछ परवाह नहीं थी। राज्य की क्षमा दशा है, इसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। जो धर्म और अर्थ पुरुषार्थ को छोड़कर अनीति से केवल काम का सेवन करते हैं—सदा विषय वासना के ही दास रहते हैं, वे नियम से कष्टों को उठाते हैं देवरति की भी यही दशा हुई। राज्य की और से उनकी यह उदासीनता मन्त्रियों को बहुत बुरी लगी। उन्होंने राजकाज के कार्य को सम्भालने की राजा से प्रार्थना भी की, पर उसका फल कुछ

नहीं हुआ। यह देखकर मंत्रियों ने विचारकर देवरति के पुत्र जयसेन को तो अपना राजा नियुक्त किया और देवरति को उनकी रानी के साथ देश से बाहर कर दिया। ऐसे काम को धिक्कार है, जिससे मान-मर्यादा धूल में मिल जाय और अपने को कष्ट सहना पड़े।

देवरति अयोध्या से निकलकर एक भयानक वन में आये। रानी को भूख ने सताया, पास खाने को एक अन का कण तक नहीं। अब वे क्या करें? इधर जैसे-जैसे समय बीतने लगा रानी भूख से बेचैन होने लगी। रानी की दशा देवरति से नहीं देखी गई। और देख भी वे कैसे सकते थे? उसी के लिए तो अपना राजपाट तक उन्होंने छोड़ दिया था। आखिर उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने उसी समय अपनी जांघ काटकर उसका मांस पकाया और रानी को खिलाकर उसकी भूख शान्त की। और प्यास मिटाने के लिए उन्होंने अपनी भुजाओं का खून निकाला और उसे एक औषधि बताकर पिलाया। इसके बाद वे धीरे-धीरे यमुना के किनारे पर आ पहुँचे। देवरति ने रानी को एक झाड़ के नीचे बैठाया और आप भोजन सामग्री लेने को पास के एक गाँव में गये।

यहाँ पर एक छोटा-सा लेकिन बहुत ही सुन्दर बगीचा था। उसमें एक कोई अपंग मनुष्य चरस खींचता हुआ गा रहा था। उसकी आवाज बड़ी मधुर थी। इसलिए उसका गाना बहुत मनोहारी और सुनने वालों को प्रिय लगता था। उसके गाने की मधुर आवाज रक्तारानी के भी कानों से टकराई। न जाने उसमें कौन-सी ऐसी मोहक शक्ति थी, जो रानी को उसने उसी समय मोह लिया और ऐसा मोहा कि उसे अपने निजत्व से भी भुला दिया। रानी सब लाज-शर्म छोड़कर उस अपंग के पास गई और उससे अपनी पाप-वासना उसने प्रगट की। वह अपंग ऐसा सुन्दर न था, पर रानी तो उस पर जी जान से न्यौछावर हो गई। सच है, ‘काम न देखे जात कुजात’। राज रानी की पाप-वासना सुनकर वह घबराकर बोला—मैं एक भिखारी और आप राज-रानी, तब मेरी आपकी जोड़ी कहाँ? और मुझे आपके साथ देखकर क्या राजा साहब जीवित छोड़ देंगे? मुझे आपके शूरवीर और तेजस्वी प्रियतम की सूरत देखकर कपकपी छूटती है। आप मुझे क्षमा कीजिए। उत्तर में रानी महाशया ने कहा—इसकी तुम चिन्ता न करो। मैं उन्हें तो अभी ही परलोक पहुँचाए देती हूँ। सच है, दुराचारिणी स्त्रियाँ क्या-क्या अनर्थ नहीं कर

डालतीं। ये तो इधर बातें कर रहे थे कि राजा भी इतने में भोजन लेकर आ गये। उन्हें दूर से देखते ही कुलटा रानी ने मायाचार से रोना आरम्भ किया। राजा उसकी यह दशा देखकर आश्चर्य में पड़ गये। हाथ के भोजन को एक ओर पटकं कर वे रानी के पास ढौड़े आकर बोले—प्रिये, कहो! जल्दी कहो! क्या हुआ? क्या किसी ने तुम्हें कष्ट पहुँचाया? तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारा आज अकस्मात् रोना देखकर मेरा सब धैर्य छूटा जा रहा है। बतलाओ, अपने रोने का कारण, जल्दी बतलाओ? रानी एक लम्बी आह भरकर बोली—प्राणनाथ! आपके रहते मुझे कौन कष्ट पहुँचा सकता है? परन्तु मुझे किसी के कष्ट पहुँचाने से भी जितना दुःख नहीं होता उससे कहीं बढ़कर आज अपनी इस दशा का है। नाथ, आप जानते हैं आज आपकी जन्मगांठ का दिन है। पर अत्यन्त दुःख है कि पापी दैव ने आज मुझे इस भिखारिणी की दशा में पहुँचा दिया। मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं, बतलाइए, मैं आज ऐसे उत्सव के दिन आपकी जन्मगांठ का क्या उत्सव मनाऊँ? सच है नाथ, बिना पुण्य के जीवों को अथाह शोक-सागर में डूब जाना पड़ता है। रानी की प्रेम भरी बातें सुनकर राजा का गला भर आया, आँखों से आँसू टपक पड़े। उन्होंने बड़े प्रेम से रानी के मुँह को चूमकर कहा—प्रिये, इसके लिए कोई चिन्ता करने की बात नहीं। कभी वह दिन भी आयेगा जिस दिन तुम अपनी कामनाओं को पूरी कर सकोगी और न भी आये तो क्या? जब कि तुम जैसी भाग्यशाली जिसकी प्रिया है उसे इस बात की कुछ परवाह भी नहीं है। जिसने अपनी प्रिया की सेवा के लिए अपना राज-पाट तक तुच्छ समझा उसे ऐसी छोटी-छोटी बातों का दुःख नहीं होता। उसे याद दुःख होता है तो अपनी प्यारी को दुःखी देखकर! प्रिय, इस शोक को छोड़ो मेरे लिए तो तुम ही सब कुछ हो! हाय! ऐसे निष्कपट प्रेम का बदला जान लेकर दिया जाएगा, इस बात की खबर या संभावना बेचारे देवरति को स्वप्न में भी नहीं थी। दैव की विचित्र गति है।

राजा के इस हार्दिक और सच्चे प्रेम का पापिनी रानी के पथर के हृदय पर जरा भी असर न हुआ। वह ऊपर से प्रेम बतलाकर बोली—अस्तु, नाथ! जो बात हो नहीं सकती उसके लिए पछताना तो व्यर्थ ही है। पर तब भी मैं अपने चित्त को संतोषित करने को इस पवित्र फूल की माला द्वारा नाम-मात्र के ही लिए कुछ करती हूँ। यह कहकर रानी ने अपने हाथ में जो फूल गूँथने की रस्सी थी, उससे राजा को बांध दिया। बेचारा तब भी यह समझा कि रानी कोई जन्मगांठ

की विधि करती होगी और वही समझ कर उसने खूब मजबूत बाँधे जाने पर भी चूँ तक नहीं किया। जब राजा बाँध डिया गया और उसके निकलने का कोई भय नहीं रहा तब रानी ने इशारे से उस अपंग को बुलाया और उसकी सहायता से पास ही बहने वाली यमुना नदी के किनारे पर ले जाकर बड़े ऊँचे से राजा को नदी में फेंक दिया और अब आप अपने दूसरे प्रियतम के पास रहकर अपनी नीच मनोवृत्तियों को संतुष्ट करने लगी। नीचता और कुलटापन की हड हो गई।

पुण्य का जब उदय होता है तब कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे या कैसी भी भयंकर आपत्ति का क्यों न सामना करना पड़े पर तब भी वह रक्षा पा जाता है। देवरति का भी कोई ऐसा पुण्य योग था, जिससे रानी के द्वारा नदी में डाल देने पर भी वह बच गया। कोई गहरी चोट उसको नहीं आयी। पर नदी से निकलकर आगे बढ़ा। धीरे-धीरे वह मंगलपुर नामक शहर के निकट आ पहुँचा। देवरति कई दिनों से लगातार चलते रहने के कारण थक गया था, उसे बीच में कोई अच्छी जगह विश्राम करने को नहीं मिली थी, इसलिए अपनी थकावट मिटाने के लिए वह एक छायादार वृक्ष के नीचे सो गया। मानो जैसे वह सुख देने वाले 1 जैन धर्म की छत्रछाया में ही सोया हो।

मंगलपुर का राजा श्रीवर्धन था। उसकी कोई संतान न थी। इसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। मंत्रियों ने यह विचार कर, कि पट्ट हाथी को एक जल-भरा घड़ा दिया जाये और वह छोड़ा जाय, जिसका वह अभिषेक करे वही अपना राजा होगा, एक हाथी को छोड़ा। दैव की विचित्र लीला है, उसे वह रंक बना देता है और जो रंक है उसे संसार का चक्रवर्ती सम्प्राट बना देता है। देवरति का दैव जब उसके विपरीत हुआ तब तो उसे उसने पथ-पथ का भिखारी बनाया, और अनुकूल होने पर पीछे सब राज-योग मिला दिया। देवरति भर नींद में झाड़ के नीचे सो रहा था। हाथी उठर ही पहुँचा और देवरति का उसने अभिषेक कर दिया, देवरति को बड़े आनन्द-उत्साह के साथ शहर में ले जाकर राज्य सिंहासन पर बैठाया गया। सच है, पुण्य जब पल्ले में होता है तब आपत्तियाँ भी सुख के रूप में परिणत हो जाती हैं। इसलिए सुख की चाह करने वालों को भगवान् के उपदेश किये हुए मार्ग द्वारा पुण्य-कर्म करना चाहिए। भगवान् की पूजा, पात्रों को दान, व्रत, उपवास ये सब पुण्य-कर्म हैं। उन्हें सदा करते रहना चाहिए।

देवरति फिर राजा हो गये। पर पहले और अब के राजापन में बहुत फर्क है। अब वे स्वयं सब राज-काज देखा करते हैं। पहले से अब उनकी परिणति में भी बहुत भेद पड़ गया है। जो बातें पहले उन्हें बहुत प्यारी थीं और जिनके लिए उन्होंने राज्य भ्रष्ट होना तक स्वीकार कर लिया था, अब वे ही बातें उन्हें अत्यन्त अप्रिय हो उठीं। अब वे स्वी नाम से धृणा करते हैं। वे एक कुल कलंकिनों का बदला सारे संसार की स्त्रियों को कुल कलंकिनों कह कर लेते हैं। वे अब गुणवती स्त्रियों का भी मुँह देखना पसन्द नहीं करते। सच है, जो एक बार दुर्जनों द्वारा ठगा जाता है फिर वह अच्छे पुरुषों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करने लगता है। “गरम दूध का जला हुआ छाछ को भी फूँक-मारकर पीता है” देवरति की भी अब विपरीत गति है। अब वे स्त्रियों को नहीं चाहते। वे सबको दान करते हैं पर जो अपंग, लूला, लंगड़ा होता है उसे वे एक अन्न का कण तक देना पाप समझते हैं।

इधर रक्तारानी ने भी बहुत दिनों तक वहीं रहकर मजा-मौज मारी और बाद में वह उस अपंग को एक टोकरे में रखकर देश-विदेश धूमने लगी। उस टोकरे को सिर पर रखे हुए वह जहाँ पहुँचती अपने को महासती जाहिर करती और कहती कि माता-पिता ने जिसके हाथ मुझे सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है—देवता है। उसकी इस ठगाई से बेचारे लोग ठगे जाकर उसे खूब रूपया पैसा देते। इसी तरह भिक्षावृत्ति करती-करती रक्तारानी मंगलपुर में आ निकली। वहाँ भी लोगों को उसके सतीत्व पर बड़ी श्रद्धा हो गई। हाँ सच है, जिन स्त्रियों ने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सरीखे देवताओं को भी ठग लिया, तब साधारण लोग उनके जाल में फँस जाये इसका आश्चर्य क्या?

एक दिन ये दोनों गाते हुए राजमहल के सामने आये। इनके सुन्दर गाने को सुनकर ड्यौढ़ीवान ने राजा से प्रार्थना की—महाराज, सिंहद्वार पर एक सती अपने अपंग पति को टोकरे में रखकर और उसे अपने सिर पर उठाये खड़ी है वे दोनों बहुत ही सुन्दर गाना जानते हैं। महाराज वे दर्शन करना चाहते हैं आज्ञा हो तो मैं उन्हें भीतर आने दूँ। इसके साथ ही सभा में बैठे हुए और प्रतिष्ठित कर्मचारियों ने भी उनको देखने की इच्छा जाहिर की। राजा ने एक बड़ा पर्दा डलवाकर उन्हें बुलवाने की आज्ञा दी।

सती सिर पर टोकरा लिए भीतर आई। उसने कुछ गाया। उसके गाने को सुनकर सभी मुग्ध हो गये और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। राजा ने उसकी आवाज सुनकर उसे पहचान लिया। उसने पर्दा हटवाकर कहा—अहा, सचमुच में यह महासती है। इसका सतीत्व मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ। इसके बाद ही उन्होंने अपनी सारी कथा सभा में प्रकट कर दी। लोग सुनकर दाँतों तले अङ्गुली दबा गये। उसी समय महारानी रक्ता को शहर से बाहर जाने का हुक्म हुआ। देवरति को स्त्रियों का चरित्र देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने अपने पहले पुत्र जयसेन को अयोध्या से बुलाया और उसे ही इस राज्य का भी मालिक बनाकर आप श्री यमधराचार्य के पास जिन दीक्षा लेने गये, जो कि अनेक सुखों को देने वाली है। साथु होकर देवरति ने खूब तपश्चर्या की, बहुतों को कल्याण का मार्ग बतलाया और अन्त में समाधि से शरीर त्याग कर वे स्वर्ग में अनेक ऋद्धियों के धारक हुए। (आरा.क.को)

मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्वपुष्यन्यद्विचेष्टिम् ।

यासां प्रकृतिदोषेण प्रेम तासां कियच्चिरम् ॥ 21 ॥

जिन स्त्रियों का दोष स्वभाव से ही मन में अन्य तथा प्रवृत्ति में कुछ अन्य ही होता है उनकी प्रीति कितने काल रह सकती है? तात्पर्य यह कि स्त्रियों की वह कपटमय प्रीति कुछ ही समय तक रहती है, तत्पश्चात् वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

अप्युत्तुङ्गा पतिष्ठन्ति नरा नार्यङ्गसंगताः ।

यथावामिति लोकस्य स्तनाभ्यां प्रकटीकृतम् ॥ 22 ॥

स्त्री के जो दोनों उन्नत स्तन नीचे की ओर झुके रहते हैं वे मानो यही प्रगट करते हैं कि स्त्री के शरीर के साथ संयोग को प्राप्त होकर उन्नत (महान्) पुरुष भी नीचे गिरेंगे—अधोगति को प्राप्त होंगे, जैसे कि उसके शरीर से संयुक्त होकर हम दोनों भी नीचे गिर रहे हैं।

यदीन्दुस्तीव्रतां धत्ते चण्डरोश्च शीतताम् ।

दैवात्तथापि नो धत्ते नर—नारी स्थिरं मनः ॥ 23 ॥

यदि दैववश चन्द्रमा तीव्रता को धारण कर लेता है और सूर्य कदाचित् शीतलता को धारण कर लेता है, तो भी स्त्री-पुरुष के विषय में अपने मन को रिथर नहीं रख सकती है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चन्द्रमा का उष्ण होना कभी सम्भव

नहीं है तथा सूर्य का कभी शीतल होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार स्त्री के प्रेम का किसी एक पुरुष में स्थिर रहना सम्भव नहीं है।

देवदैत्योरगव्यालग्रहचन्द्राक्चेष्टितम् ।

विदन्ति ये महाप्राज्ञास्तेऽपि वृत्तं न योषिताम् ॥ 24 ॥

जो अतिशय बुद्धिमान मनुष्य देव, दैत्य, सर्प, हाथी, ग्रह, चन्द्र और सूर्य की चेष्टा को जानते हैं वे भी स्त्रियों के चरित्र को नहीं जानते हैं।

सुखदुःखजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानन्ति ।

मुहूर्न्ति तेऽपि नूनं तत्त्वविदश्चेष्टिते स्त्रीणाम् ॥ 25 ॥

जो मनुष्य सुख-दुःख, जय-पराजय और जीवन-मरण को जानते हैं वे तत्त्व के जानकार पुरुष भी स्त्रियों के चरित्र के विषय में मूढ़ता को प्राप्त होते हैं—उसे नहीं जानते हैं।

जलधेर्यानपात्राणि ऋक्षाणि गगनस्य च ।

यान्ति पारं न तु स्त्रीणां दुश्चरित्रस्य केवन ॥ 26 ॥

जहाज समुद्र के पार पहुँचते हैं तथा नक्षत्र आकाश के पार पहुँचते हैं परन्तु स्त्रियों के दुश्चरित्र के पार कोई भी नहीं पहुँचते हैं—उसे जानने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है।

आरोपयन्ति संदेहतुलायामतिनिर्दयः ।

नार्यः पतिं च पुत्रं च पितरं च क्षणादपि ॥ 27 ॥

स्त्रियाँ अतिशय निर्दय होकर पति, पुत्र और पिता को भी सन्देह के तराजू पर क्षणभर में आरोपित किया करती हैं। अभिप्राय यह है कि स्त्रियाँ अपने पति, पुत्र और पिता को भी सन्देह की दृष्टि से देखने लगती हैं।

गृहणन्ति विपिने व्याघ्रं शकुन्तं गगने स्थितम् ।

सरिद्घदगतं मीनं न स्त्रीणां चपलं मनः ॥ 28 ॥

कितने ही मनुष्य वन में स्थित व्याघ्र को, आकाश में स्थित पक्षी को तथा नदी व तालाब में स्थित मछली को ग्रहण किया करते हैं परन्तु स्त्रियों के चंचल मन को कोई भी नहीं ग्रहण कर सकता है—उनके मन में स्थित विचारों को कोई भी नहीं जान पाता है।

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्ये ॥

न तदस्ति जगत्यस्मिन् मणिमन्त्रौषधाज्जनम् ।

विद्याश्च येन सद्ग्रावं प्रयास्यन्तीह योषितः ॥ २९ ॥

इस संसार में वह कोई मणि, मंत्र, औषध, अंजन तथा ऐसी वे विद्याएँ भी नहीं हैं, जिनके आश्रय से वहाँ स्त्रियाँ उत्तम अभिप्राय को प्राप्त करेंगी। तात्पर्य यह कि स्त्रियों को सुमार्ग पर लाने का कोई उपाय नहीं हैं।

मनोभवसमं शूरं कुलीनं भुवनेश्वरम् ।

हत्वा स्त्रियः पर्ति सद्यो रमन्ते चेटिकासुतैः ॥ ३० ॥

स्त्रियाँ कामदेव के समान सुन्दर, पराक्रमी, कुलीन और लोक के स्वामी (राजा) जैसे पति को शीघ्र ही मार करके दासी पुत्रों (नीच पुरुषों) के साथ रमण किया करती हैं।

स्मरोत्सङ्गमपि प्राप्य वाञ्छन्ति पुरुषान्तरम् ।

नार्यः प्रायः स्वभावेन वदन्तीत्यमलाशया ॥ ३१ ॥

प्रायः स्त्रियाँ कामदेव की गोद को भी पाकर के कामदेव के समान सुन्दर पति को भी प्राप्त करके स्वभाव से अन्य पुरुष की इच्छा किया करती हैं ऐसा निर्मल अभिप्राय वाले मुनिजन बतलाये हैं।

विनाज्जनेन तन्त्रेण मन्त्रेण विनयेन च ।

वञ्चयन्ति नरं नार्यः प्रज्ञाधनमपि क्षणे ॥ ३२ ॥

स्त्रियाँ अंजन, औषधि, मन्त्र और विनय के बिना भी क्षणभर में अतिशय बुद्धिमान को भी अपने वश करती हैं, अर्थात् उससे भी वंचना करती है ऐसा मैं मानता हूँ।

कुलजातिगुणभ्रष्टं निकृष्टं दुष्टचेष्टितम् ।

अस्पृश्यमधं प्रायो मन्ये स्त्रीणां प्रियं नरम् ॥ ३३ ॥

जो पुरुष कुल, जाति एवं गुणों से भ्रष्ट, निन्दा, दुराचारी, छूने के अयोग्य और हीन होता है वह प्रायः स्त्रियों को प्रिय लगता है ऐसा मैं मानता हूँ।

दोषान् गुणेषु पश्यन्ति प्रिये कुर्वन्ति विप्रियम् ।

संमानिताः प्रकृप्यन्ति निसर्गकुटिलाः स्त्रियाः ॥ ३६ ॥

स्वभाव से कुटिल स्त्रियाँ गुणों में दोषों को देखा करती हैं, प्रिय (हृतैषी) के विषय में वे दुष्टतापूर्ण व्यवहार करती हैं तथा उनका आदर किये जाने पर वे

त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्ये ॥

क्रोध को प्राप्त होती हैं।

कृत्वाप्यकार्यलक्षणिणि प्रत्यक्षमपि योषितः ।

छादयन्त्येव निःशङ्का विश्ववज्जनपण्डिताः ॥ ३७ ॥

स्त्रियाँ सभी जनों को ठगने में चतुर होती हैं। वे प्रत्यक्ष में लाखों अयोग्य कार्यों को करके भी उन्हें सन्देह से रहित होकर आच्छादित किया करती हैं—हमारे दोष कभी प्रगट हो सकते हैं, ऐसा सन्देह भी नहीं रहता है।

दानसन्मानसं भोगप्रणतिप्रतिपत्तिभिः ।

अपि सेवापरं नाथं धन्ति नार्योऽतिनिर्दियाः ॥ ३८ ॥

जो दान, समान सम्भोग, नमन और आदर सल्कार के द्वारा निरन्तर ही उनकी सेवा में तत्पर रहता है ऐसे सुयोग्य पति को भी वे स्त्रियाँ निर्दयतापूर्वक मार डालती हैं।

‘कुशील स्त्री—महाराक्षसी’

पलास गाँव में सिंहबल नाम का एक साधारण गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम गोपवती था। गोपवती बड़े दुष्ट स्वभाव की स्त्री थी। उसकी दिन-रात की खटपट से बेचारा सिंह बल तबाह हो गया। उसे एक पलभर के लिए भी गोपवती के द्वारा कभी सुख नहीं मिला।

गोपवती से तंग आकर एक दिन सिंहबल पास ही के एक पद्मिनीखेट नाम के गाँव में गया। वहाँ उसने अपनी पहली स्त्री को बिना कुछ पृछे—ताछे गुप्त रीति से सिंहसेन चौधरी की सुभद्रा नाम की लड़की से, जो कि बहुत ही खूब—सूरत थी, ब्याह कर लिया। किसी तरह यह बात गोपवती को मालूम हो गई। सुनते ही क्रोध के मारे वह आग—बबूला हो गई। उससे सिंहबल का यह अपराध नहीं सहा गया। वह उसे उस के अपराध की योग्य सजा देने की फिराक में लगी।

एक दिन शाम के कोई सात बजे होंगे कि गोपवती अपने घर से निकलकर पद्मिनीखेट गई। उस समय कोई ग्यारह बज गये होंगे। गोपवती सीधी सिंहसेन के घर पहुँची। घर के लोगों ने समझा कि कोई आवश्यक काम के लिए यह आई होगी, सवेरा होने पर विशेष पृछ—ताछ करेंगे। यह विचार कर वे सब सो गये। गोपवती भी तब लोगों को दिखाने के लिए सो गई। पर जब सबको नींद आ गई, तब आप चुपके से उठी और जहाँ अपनी माँ के पास बेचारी सुभद्रा सोई

हुई थी, वहाँ पहुँचकर उस पापिनी ने सुभद्रा का मस्तक काट लिया और उसे लेकर आप रात ही में अपने घर पर आ गई। सबेरा होते ही यह हाल सिंहबल को मालूम हुआ। सुभद्रा के मुर्दे को देखकर उसे बेहद दुःख हुआ। वह खिन्न मन होकर अपने घर आ गया। उसे आया देखकर गोपवती अब उसका बड़ा आदर सत्कार करने लगी पर सिंहबल के हृदय पर तो सुभद्रा के मरण की बड़ी गहरी चोट लगी थी, इसलिए उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और वह सदा उदास रहा करता था। और सच भी है, एक महादुःखी को भोजन वगैरह में क्या प्रीति होती होगी? सिंहबल की सुभद्रा के लिए यह दशा देख गोपवती का क्रोध और भी बढ़ गया। एक दिन बेचारा सिंहबल उदास मन से भोजन कर रहा था। यह देख गोपवती ने क्रोध से सुभद्रा का मस्तक लाकर थाली में डाल दिया और बोली— हाँ, बिना इसके देखे तुझे भोजन अच्छा नहीं लगता था, अब तो अच्छा लगेगा न? सुभद्रा के सिर को देखकर सिंहबल काँप गया। वह हायः यह तो महाराक्षसी है। इस प्रकार जोर-से चिल्लाकर डर के मारे भागने लगा। इतने में राक्षसी गोपवती ने पास ही पड़े हुए भाले को उठाकर सिंहबल की पीठ में इतने जोर से मारा कि वह उसी समय तड़फड़ा कर वहाँ पर ढेर हो गया। गोपवती के ऐसे धृणित चरित को देखकर बुद्धिमानों को उचित है कि वे दुष्ट स्त्रियों पर कभी विश्वास न लावें। (आ.क.को.)

“कामासक्त दुष्परिणाम”

आभीर देश के नासक्य नगर में सागरदत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम नागदत्ता था। इसका एक लड़का और लड़की थी। दोनों के नाम थे श्रीकुमार और श्रीषेण। नागदत्ता का चाल चलन अच्छा न था। अपनी गायों को चराने वाले नन्द नाम के ग्याले के साथ उसकी आशनाई थी। नागदत्ता ने उसे एक दिन कुछ सिखा—सुझा दिया। सो वह बीमारी का बहाना बनाकर गौएँ चराने को नहीं आया। तब बेचारे सागरदत्त को स्वयं गौएँ चराने को जाना पड़ा। जंगल में गौओं को चरते छोड़कर वह एक झाड़ के नीचे सो गया। पीछे से नन्द गुवाल ने आकर उसे मार डाला। बात यह थी, नागदत्ता ने ही अपने पति को मार डालने के लिए उसे उकसाया था और फिर पर स्त्री—लम्पटी पुरुष अपने सुख में आने वाले विज्ञ को नष्ट करने के लिए कौन बुरा काम नहीं करता।

नागदत्ता और पापी नन्द इस प्रकार अनर्थ द्वारा अपने सिर पर एक बड़ा भारी पाप का बोझा लादकर अपनी नीच मनोवृत्तियों को प्रसन्न करने लगे। श्रीकुमार अपनी माता की इस नीचता से बे-हृद कष्ट पाने लगा। उसे लोगों को मुँह दिखाना तक कठिन हो गया। उसे बड़ी लज्जा आने लगी और इसके लिए उसने अपनी माता को बहुत कुछ कहा—सुना भी। पर नागदत्ता के मन पर उसका कुछ असर नहीं हुआ। वह कुचली हुई नागिन की तरह उसी पर दाव खाने लगी। उसने नाराज होकर श्रीकुमार को भी मार डालने के लिए नन्द को उकसाया। नन्द फिर बीमारी का बहाना बनाकर गौएँ चराने को नहीं आया। तब श्रीकुमार स्वयं ही जाने को तैयार हुआ। उसे जाता देखकर उसकी बहन श्रीषेणा ने उसे रोककर कहा—भैया, तुम मत जाओ। मुझे माता का इसमें कुछ कपट दिखता है। उसने जैसे नन्द द्वारा अपने पिताजी को मरवा डाला है, वह तुम्हें भी मरवा डालने के लिए दाँत पीस रही है। मुझे जान पड़ता है, नन्द इसीलिए बहाना बनाकर आज गौएँ चराने को नहीं आया। श्रीकुमार बोला—बहन, तुमने मुझे आज सावधान कर दिया, यह बड़ा ही अच्छा किया। तुम मत घबराओ। मैं अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकूँगा। अब मुझे रंचमात्र भी डर नहीं रहा और मैं तुम्हारे कहने से नहीं भी जाता, पर इससे माता को अधिक सन्देह होता और वह फिर कोई दूसरा ही यल मुझे मरवाने का करती क्योंकि वह चुप तो कभी बैठी ही न रहेगी। आज बहुत अच्छा मौका हाथ लगा है। इसलिए मुझे जाना ही उचित है और जहाँ तक मेरा बस चलेगा मैं जड़मूल से उस अंकुर को ही उखाड़कर फेंक दूँगा, जो हमारी माता के अनर्थ का मूल कारण है। बहन, तुम किसी तरह की चिन्ता मन में न लाओ। अनाथों का नाथ अपना भी मालिक है।

श्रीकुमार बहन को समझाकर जंगल में गौएँ चराने को गया। उसने वहाँ एक बड़े लकड़े को वस्त्रों से ढककर इस तरह रख दिया कि वह दूसरों को सोया हुआ मनुष्य जान पड़ने लगे और स्वयं एक ओर छिप गया। श्रीषेणा की बात सच निकली नन्द नंगी तलवार लिए दबे पाँव उस लकड़े के पास आया और तलवार उठाकर उसने उस पर दे मारी। इतने में पीछे से आकर श्रीकुमार ने उसकी पीठ में जोर से एक भाले का बार जमाया कि भाला आर-पार हो गया और नन्द देखते—देखते तड़फड़ा कर मर गया इधर श्रीकुमार गौओं को लेकर

घर लौट आया। आज गौएँ दोहने के लिए भी श्रीकुमार ही गया। उसे देखकर नागदत्ता ने उससे पृष्ठा-क्यों कुमारः नन्द नहीं आया? मैंने तो तेरे ढूँढ़ने के लिए उसे जंगल में भेजा था। क्या तूने उसे देखा है कि वह कहाँ पर है? श्रीकुमार से तब न रहा गया और गुस्से में आकर उसने कह डाला माता, मुझे तो मालूम नहीं कि नन्द कहाँ है। पर मेरा यह भाला अवश्य जानता है। नागदत्ता की आँखें जैसे ही उस खून से भरे हुए भाले पर पड़ी तो उसकी छाती धड़क उठी। उसने समझ लिया कि इसने उसे मार डाला है। अब तो क्रोध से वह भी भर गई। उसके सामने एक मूसला रखा था। उस पापिनी ने उसे ही उठाकर श्रीकुमार के सिर पर इतनी जोर से मारा कि सिर फटकर तत्काल वह भी धराशायी हो गया। अपने भाई की इस प्रकार हत्या हुई देखकर श्रीषेणा दौड़ी हुई आयी और नागदत्ता के हाथ से झट्ट से मूसला छुड़ाकर उसने उसके सिर पर एक जोर की मार जमाई, जिससे वह भी अपने किये की योग्य सजा पा गई। नागदत्ता मरकर पाप के फल से नरक गई। सच है, पापी को अपना जीवन पाप में ही बिताना पड़ता है। नागदत्ता इसका उदाहरण है। उस दुराचार को धिक्कार, उस काम को धिक्कार, जिसके वश मनुष्य महापाप कर्म कर और फिर उसके फल से दुर्गति में जाता है। इसलिए सत्पुरुषों को उचित है कि वे जिनेन्द्र भगवान के उपदेश किये, सबको प्रसन्न करने वाले और सुख प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य ब्रत का सदा पालन करें। (आरा.कथा.)

कुर्वन्ति यन्मदोद्रेकदर्पिता भुवि योषितः।
शतांशमपि तस्येह न वक्तुं कश्चिदीश्वरः॥1॥

ज्ञानार्थव-अ. 12

इस भूतल पर काम के उन्माद की वृद्धि से गर्व को प्राप्त हुई स्त्रियाँ जो अकार्य करती हैं, उसके सौंवें भाग का वर्णन करने के लिए कोई समर्थ नहीं है।

धारयन्त्यमृतं वाचि हृदि हालाहलं विषम्।
निसर्गकुटिला नार्यो न विद्मः केन निर्मिताः॥2 1॥

स्वभाव से मायापूर्ण व्यवहार करने वाली स्त्रियाँ वचन में अमृत को तथा हृदय में हलाहल (एक विशेष जाति का भयानक विष) विष को धारण करती हैं— वे दूसरों को ठांगने के लिए वचन तो मधुर बोलती हैं, परन्तु मन में उनके घात का ही विचार करती हैं। हम नहीं जानते कि उन्हें किसने बनाया है?

वज्रज्वलनले खेव भोगिदं ध्रेव के वलम्।

वनितेयं मनुष्याणां संतापभयदायिनी॥3॥

यह स्त्री वन्नाग्नि की रेखा के समान अथवा सर्प की विषैली दाढ़ के समान मनुष्यों को केवल सन्ताप और भय को ही दिया करती है।

उद्वासयति निःशङ्का जगत्पूज्यं गुणव्रजम्।

वधन्ती वसतिं चित्ते सतामपि नितम्बिनी॥4॥

सत्युरुषों के भी मन में घर को बांधने वाली स्थान को प्राप्त करने वाली स्त्री निर्भय होकर समस्त संसार में पूजे जाने योग्य गुण समूह को उजाड़ देती है, नष्ट कर देती हैं।

वरमालिङ्गिता कुद्धा चलल्लोलात्र सर्पिणी।

न पुनः कौतुकेनापि नारी नरकपद्धतिः॥5॥

चलती हुई चंचल जिहावाली कुद्ध सर्पिणी का आलिंगन करना कहीं अच्छा है, परन्तु नरक के मार्ग भूत नरक को प्राप्त करने वाली स्त्री का कुतूहलपूर्वक भी आलिंगन करना ठीक नहीं है।

हृदि दत्ते तथा दाहं न स्पृष्टता हुतभुविश्या।

वनितेयं यथा पुंसामिन्द्रियार्थप्रकोपिनी॥6॥

आलिंगन की गई अग्नि की ज्वाला मनुष्यों के हृदय में वैसे दाह को नहीं देती है जैसे, दाह को यह इन्द्रिय विषयों को कुपित करने वाली स्त्री दिया करती है।

सन्ध्येव क्षणरागाद्या निम्नगेवाधरप्रिया।

वक्रा बलेन्दुलेखेव भवन्ति नियतं स्त्रियः॥7॥

जिस प्रकार संध्या क्षण भर के लिए राग (लालिमा) से व्याप्त हुआ करती है, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी नियम से क्षण भर के लिए ही राग से व्याप्त हुआ करती हैं, क्षण भर के लिए ही वे पुरुष से अनुराग किया करती हैं, जिस प्रकार नदी अधर (अधोभाग) से प्रीति किया करती है—निचली भूमि की ओर बहा करती है—उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अधर (नीच पुरुष) से प्रेम किया करती है तथा जिस प्रकार बाल (द्वितीय का) चन्द्र की रेखा कुटिल (तिरछी) होती है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी नियम से कुटिल (मायाचारिणी) हुआ करती हैं।

धूमावल्य इताशङ्का कुर्वन्ति मलिनं क्षणात्।
मदनोन्मादसंभ्रान्ता योषितः स्वकुलगृहम्॥ 8॥

जिस प्रकार धुएँ की पंक्तियाँ (समूह) निःसन्देह घर को मलिन (काला) किया करती हैं, उसी प्रकार काम के उन्माद से त्रस्त हुई स्त्रियाँ भी निश्चय से अपने कुल को क्षण भर में मलिन (कलंकित) कर दिया करती हैं।

निर्दयत्वमनार्यत्वं मूर्खत्वमतिचापलम्।
वज्चकत्वं कुशीलत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ 9॥

निर्दयता, दुष्टता, मूर्खता, अतिशय चपलता, धोखा-देही और कुशीलता; ये दोष स्त्रियों के स्वभाव से उत्पन्न होने वाले हैं।

विचरन्त्यः कुशीलेषु लङ्घयन्त्यः कुलक्रमम्।
न स्मरन्ति गुरुं मित्रं पति पुत्रं च योषितः॥ 10॥

स्त्रियाँ दुराचारी जनों में विचरण करती हुई कुल की परिपाठी का उल्लंघन किया करती हैं। वे उस समय गुरु, मित्र, पति और पुत्र का भी स्मरण नहीं करती हैं। दुराचरण में प्रवृत्त होकर वे गुरु आदि की भी परवाह नहीं करती हैं।

वश्याञ्जनानि तन्त्राणि मन्त्रयन्त्राद्यानेकथा।
वर्थीभवन्ति सर्वाणि वनिताराधनं प्रति॥ 11॥

वश करने के योग्य अंजन, उत्तम औषधियाँ तथा अनेक प्रकार से मंत्र और यंत्र आदि ये सब स्त्री आराधना में व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

अगाधक्रोधवेगान्धा: कर्म कुर्वन्ति तत्स्त्रयः।
सद्यः पतति ये नैतद्वन्नं दुःखसागरे॥ 12॥

स्त्रियाँ अथाह क्रोध के वेग से अन्धी होकर उस कार्य को करती हैं कि जिससे यह लोक शीघ्र ही दुःखरूपी समुद्र में पड़ जाता है।

स्वातन्त्र्यमभिवाञ्छन्त्यः कुलकल्पमहीरुहम्।
अविचार्यैव निष्ठन्ति स्त्रियोऽभीष्टफलप्रदम्॥ 13॥

स्वतन्त्रता की इच्छा करने वाली स्त्रियाँ मूर्खता से अभीष्ट फल के देने वाले कुलरूप कल्पवृक्ष को नष्ट कर डालती हैं।

न दानं न च सौजन्यं न प्रतिष्ठा न गौरवम्।
न च पश्यन्ति कामान्धा योषितः स्वान्ययोहितम्॥ 14॥

काम से अन्धी हुई स्त्रियाँ न दान को देखती हैं, न सज्जनता का विवेक रखती हैं, न प्रतिष्ठा का विचार करती हैं, न अपनी व अपने कुल की महानता को देखती हैं और न अपने व दूसरों के हित का भी ध्यान रखती हैं।

न तत् कुद्धा हरिव्याघ्रव्यालानलनरेश्वराः।
कुर्वन्ति यत्करोत्येका नर नारी निरंकुशा॥ 15॥

स्त्री स्वच्छंदता को प्राप्त होकर अकेली ही मनुष्य के जिस अनर्थ को करती है, उसे क्रोध को प्राप्त हुए सिंह, व्याघ्र, सर्प, अग्नि और राजा भी नहीं करते हैं।

न तद्दुष्टं श्रुतं ज्ञातं न तच्छास्त्रेषु चर्चितम्।
यत्कुर्वन्ति महापापं स्त्रियः कामकलङ्किताः॥ 19॥

काम से कलंकित स्त्रियाँ जिस घोर पाप को करती हैं, वह न देखा गया है, न सुना गया है, न जाना गया है और न शास्त्रों में चर्चा का विषय भी बना है।

यमजिह्वानलञ्जवालावज्ञ विद्युद्विषाआङ्गुरान्।
समाहृत्य कृता मन्ये वेधसेयं विलासिनी॥ 20॥

मैं समझता हूँ कि ब्रह्माने यमराज की जीभ, अग्नि की ज्वाला, वज्र, बिजली और विष के अंकुरों को लेकर इस स्त्री को निर्मित किया है। तात्पर्य यह है कि स्त्री उक्त यमराज की जीभ आदि की अपेक्षा भी अधिक सन्ताप देने वाली है।

धिक् मदन (धिक् काम)

भर्तृहरि के राज्य में ही नगर का एक दरिद्र ब्रात्मण, अपनी इष्ट सिद्धि के लिए किसी देवता की घोर आराधना कर रहा था। उसे तप करते हुए जब अनेक वर्ष बीत गये और तप के कष्ट से उसका शरीर एकदम कृष हो गया तब कहीं जाकर उसके देवता का आसन हिला। देवता ने उस महा तपस्यी के सामने प्रकट होकर कहा—“हे ब्रात्मण! मैं तुम्हारे तप से बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ इसलिए वरदान में तुम्हें यह एक फल देता हूँ। इसे तुम कोई साधारण फल न समझना। इसका नाम—‘अमर फल’ है। इसके खाने वाले की मृत्यु नहीं हो सकती। जाओ, तुम इसे खाकर पृथ्वी पर अमर हो जाओ।” इतना कहकर वह देवता अन्तर्धर्यन हो

गये।

ब्रात्मण उस अमरफल को लेकर अपने घर आया और स्त्री से उसने उस फल का सारा वृतान्त सुनाया। ब्रात्मणी उस बात को सुनकर प्रसन्न होने के स्थान पर असन्तुष्ट होकर बोली—ये जिस देवता से आप अमरफल लेकर आये हैं, इससे तो हमारा कष्ट घटने की बजाय उल्टा बढ़ेगा। हम लोग जन्म से गरीब हैं, अगर वह धन देते तो कुछ भला होता। निर्धन को इस जगत में सुख नहीं है। अपने ही बन्धुबान्धव हमें दरिद्र समझकर छोड़ देते हैं। दरिद्र की इस संसार में कोई कीमत नहीं। हम दरिद्रता के कारण ही तो इस जिन्दगी से दुःखी हो चुके हैं और अब तो यह कष्ट और भी बढ़ जायेगा। यह अमरफल खाकर तो हमें अनन्त काल तक दरिद्र्य कष्ट भोगना पड़ेगा। यह फल तो उन्हीं लोगों के लिए अच्छा है, जिन्हें परमात्मा ने राजपाट, धन-वैभव, ऐश्वर्य और सुख-समृद्धि सब कुछ दिया हो। इसलिए मेरी बात मानो तो इसे महाराज भर्तुहरि को दे आइये और उनके बदले में धन लेकर अपनी बाकी बची हुई जिन्दगी सुख से व्यतीत कीजिए।

बहुत कुछ सोच-विचार कर ब्रात्मण उस अमरफल को लेकर महाराज के पास सभा में पहुँचा। महाराज ने उस ब्रात्मण को अपने पास बुला लिया और पूछा—“हे द्विजवर! आज्ञा कीजिए आपको क्या कष्ट है, आपने यहाँ तक आना कैसे किया? क्या चाहते हो?” ब्रात्मण ने उस अमरफल की सारी कहानी सुनाकर वह फल राजा के हाथों पर रख दिया। महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से उस फल को स्वीकार किया और ब्रात्मण को कई लाख स्वर्ण मुद्रायें देकर विदा किया।

ब्रात्मण के विदा होते ही भर्तुहरि मन-ही-मन यह विचारने लगे कि वास्तव में यह फल परमात्मा ने ही कृपा करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब मुझे यह समझ नहीं आता कि यह अमर फल मैं खाऊँ या अपनी प्राण-प्रिया पिंगला रानी को खिलाऊँ। यदि इसे मैं खाता हूँ तो मैं सदा के लिए अमर हो जाऊँगा। मेरा ध्यान, रूप और यौवन सदा स्थिर रहेगा, बुद्धापा पास न आयेगा, पर मेरे सुखों का आधार तो रानी पिंगला ही है, उसका रूप लावण्य कुछ दिनों बाद नष्ट हो जायेगा, वह बृद्धी हो जायेगी। इस स्थिति में मैं किसके साथ सुख-उपभोग कर सकूँगा। परन्तु यदि वह अमरफल खाये और बृद्धी न हो और उसकी सौन्दर्य प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहे तो मैं उसके साथ सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकूँगा। यह विचार कर महाराज अमर फल को हाथ में लेकर रानी के निवास

की ओर चल दिये।

दासियों द्वारा महाराज के आगमन का समाचार सुनकर पिंगला उन्हें लेने के लिए द्वार तक आई। वह उनके गले में हाथ डालकर उन्हें प्रेमपूर्वक अन्दर ले गई। महाराज ने कहा—“प्रिया! आज एक बड़ा आश्चर्यजनक फल मुझे मिला है जिसे अमरफल कहते हैं, उसी को लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ।” राजा ने फल निकालकर रानी को दिखाते हुए कहा—“रानी! देखो, यह है अमरफल, इसे एक देवता ने किसी तपस्यी ब्रात्मण को उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर दिया था। इसको खाने वाला सदा अमर और जीवन रहता है। अतः मैं चाहता हूँ कि तुम इस फल को खाओ जिससे तुम्हारा सौन्दर्य संवैध बना रहे।” यह कहते हुए राजा ने वह फल रानी को दे दिया। पहले तो रानी ने यही कहा कि नहीं प्राणनाथ, आप ही इस फल को खायें, आप ही से मेरा सौभाग्य है, परमात्मा सदा आपको अजर-अमर रखे। लेकिन रानी की ये सब बातें दिखावा ही थी। राजा के फिर कहने पर कि नहीं, रानी तुम ही इस फल को खाओ, तुम्हारे खाने से ही मुझे सन्तोष होगा तो उसने वह फल महाराज से लेकर कहा कि जब आपका यही हुक्म है तो मैं इस फल को स्नान करके शुद्ध होकर खाऊँगी। महाराज उसकी बात पर विश्वास करके फल उसे देकर सभा में लौट आये।

महाराज के जाते ही पिंगला ने अपने प्रेमी दरोगा को बुला लिया। पिंगला उसे लेने दरवाजे तक गई और गले में हाथ डालकर महल के अन्दर ले आई। दरोगा ने पिंगला से पूछा—“क्या बात, हैं आज असमय ही आपने कैसे याद किया?” रानी बोली—“प्यारे, आज महाराज ने मुझे एक फल दिया है, उसके खाने से आठमी सदा जीवन और अमर हो जाता है। मैंने उनसे खाने का बायदा करके फल ले लिया पर मेरे सजन! संसार में मुझे तुमसे प्रिय और कोई नहीं है, तुम ही मेरे सुख के कारण और सारा आनन्द हो इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम उस फल को खाओ।” दरोगा बोला—“अच्छा प्यारी? मैं इसे खा लूँगा। पर जैसे तुमने कहा कि यह देवता की दी हुई चीज है इसलिए पवित्र होकर ही खानी चाहिए। मैं अभी जाकर क्षिप्रा में स्नान करके इसे खा लूँगा।” रानी ने अमरफल दरोगा को दे दिया। मन ही मन दरोगा भी अपनी सफलता पर बड़ा प्रसन्न हुआ कि मैंने इसे अच्छा चकमा दिया। मैं खुद इस फल को खाऊँगा तो क्या लाभ? मैं इसे अपनी प्रेमिका को खिलाऊँगा। यह मेरी प्राण-प्यारी सदा नवयुवती बनी रहेगी

तो मैं हमेशा उसके साथ आनन्द करता रहूँगा। वह सोचकर वह अमरफल को लेकर अपनी प्रेमिका 'एक वेश्या' के पास पहुँचा। दरोगा साहब को आया देखकर वेश्या ने उन्हें अपने सामने बिठाया और आने का कारण पूछा।

दरोगा ने कहा—‘प्राणप्रिये! आज मुझे एक बड़ी अद्भुत वस्तु मिली है। इसके खाने वाला कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और उसका धौवन भी चिरस्थाई हो जाता है अतः मैं चाहता हूँ कि तुम इस अमर फल को खाओ। तुम यदि सदा सर्वदा आज जैसी रूप-लावण्यमयी रहोगी तो जिन्दगी में बस मजा ही मजा रहेगा।’ वेश्या ने कहा—‘अच्छा दरोगा साहब, मैं आपकी आज्ञा कभी नहीं टाल सकती, स्नान करके मैं इस फल को खा लूँगी।’

वेश्या की बात सुनकर दरोगा ने वह फल उसे दे दिया और स्वयं अपने काम पर लौट आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—‘मेरी सारी आयु तो पाप कमाते बीती। न जाने कितने पापों का क्या—क्या दण्ड मुझे भुगतना पड़ेगा। अगर मैंने इस अमर फल को खा लिया तो न जाने और कब तक या अनन्त काल तक ही इन पापों को इकट्ठा करती रहूँगी। अतः मुझे यह फल खाना तो बिल्कुल भी उचित नहीं है। इसे तो महाराज भर्तृहरि ही खायें तो ठीक रहेगा। उनके अमर होने से मेरी आत्मा को सन्तोष होगा कि जिन्दगी में एक काम तो ढंग का किया। ऐसे राजा के अमर होने से प्रजा सदा सुखी रह सकेगी। ऐसे राजा तो बहुत कम होते हैं। अतः, यह फल मैं उन्हें ही देने आती हूँ। आज विक्रमादित्य को देश-निकाला दिए हुए न जाने कितने वर्ष बीत चुके हैं। महाराज भर्तृहरि की राजसभा फिर लगी हुई है। चोकीदार ने आकर सूचना दी कि कोई बाईं जी आई है और महाराज से मिलना चाहती हैं। महाराज ने उसे राजसभा में लिवा लाने की स्वीकृति दी।

उस भरी सभा में एक अपूर्व सुन्दरी अद्भुत रूप-लावण्यमयी और बेशकीमती कपड़ों में सजी नवयुवती वेश्या अपने सुकोमल हाथों से एक विचित्र फल महाराज के आगे करती हुई बोली—‘महाराज! आज मुझे यह एक अपूर्व फल मिला है, यह फल बड़ा प्रभावशाली है, इसके खाने वाला सदा अमर रहेगा। मैं इस फल को खाऊँगी तो सदा पाप कमाऊँगी, आप इस फल को खायेंगे तो प्रजा सुखी हो जाएगी.....।’

वेश्या तो महाराज का गुणानुवाद किये जा रही थी लेकिन महाराज को होश

कहाँ? उनकी तो फल देखते ही ऊपर की साँस ऊपर और नाचे की साँस नीचे रह गई, उनके चेहरे का रंग उड़ गया था। वह किंकर्त्तव्यविमृद्ध हो गये। कुछ सम्मलते हुए उन्होंने वह फल वेश्या के हाथ से ले लिया और उसी क्षण उसे खा लिया।

उन्हें पिंगला के विश्वासयात पर बड़ी आत्मगलानि हुई। रानी के मुलपूर्ण व्यवहार और कपट पर बड़ी धृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें जबरदस्त सदमा लगा। अब उनकी आँखें खुलीं तो उन्हें पता लगा कि श्रियों की प्रीति में सार नहीं होता। उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। संसार के विषय-भोगों से एक क्षण में नफरत हो गई।

उन्होंने समझ लिया कि संसार में कोई किसी का नहीं होता। यह सब मिथ्या जाल है और इसमें फँसकर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन गवाँ देते हैं। उन्होंने कहा—

‘यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।

साप्यन्यमिच्छिति जनं स जनाऽन्यसक्तः।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥’

(नीतिशतक, श्लोक सं. 2)

मैं जिसको सदा चाहता हूँ (वह मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती, वह दूसरे पुरुष को चाहती है, वह पुरुष (दरोगा) रानी को नहीं चाहता, वह दूसरी स्त्री पर मरता है। वह स्त्री जिसे रानी का यार दरोगा चाहता है, वह मुझे चाहती है इसलिए उस रानी को धिक्कार है!! उस कामदेव को धिक्कार है!!! जो यह सब कर्म करता है।

यह कहते हुए उन्होंने सारा राज्य-पाठ और धन-दौलत एक क्षण में त्यागकर वन का रास्ता लिया। चलते समय उन्होंने मन्त्री से कहा—मैंने अपने धर्मात्मा, चरित्रवान और सत्यवक्ता भाई विक्रमादित्य के साथ बड़ा अन्याय किया है। मुझे उस समय कुछ भी ज्ञान न रहा, मेरे अक्ल पर पर्दा पड़ गया था। उस कुलटा ने मुझ पर कुछ जाढ़ कर दिया था। अब तुम विक्रम का पता लगाना और उसे ढूँढ़ कर गद्दी पर बिठा देना।

महाराज यदि उस समय चाहते तो पिंगला को जमीन में जिन्ना गड़वा सकते थे दरोगा को तोप के मूँह पर रख उड़वा सकते थे। परन्तु उन्हें तो निर्मल ज्ञान हो गया था।

अध्याय

4

अब्रह्म से अपूरणीय क्षति

ग्लानिर्मूर्च्छा भ्रमः कम्पः श्रमः स्वेदोऽङ्गविक्रियाः।
क्षयरोगादयो दोषा मैथुनत्थाः शरीरिणाम्॥ 12॥

ज्ञानार्थ-अ. 13

प्राणियों को जो ग्लानि (खेड), मूर्च्छा, भ्रान्ति, कम्प, श्रम (थकावट) स्वेद (ताप या परीना), अंगविकार और क्षयरोग आदि दोष उत्पन्न होते हैं वे सब मैथुन से उत्पन्न होते हैं। चिकित्सा विज्ञान में भी अब्रह्मचर्य, अति मैथुन, अनियमित स्त्री प्रसंग से जो मर्हति श्रात होती है उसका भी वरण है। वाग्भट विरचित अष्टांग हृदय में अब्रह्मचर्य के नाम का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है—

भ्रमक्लमोरुदौर्वल्य वलधात्विन्द्रिय क्षयाः।
अपर्वमरणं च स्यादन्यथा गच्छतः स्त्रियम्॥ 73॥

अष्टांगहृदय-सप्तम् अध्याय

ब्रह्मचर्य विधि को न पालने से भ्रम, क्लम, जांघों में निर्बलता, बलक्षय, धातुक्षय, इन्द्रिय का अथ और अकाल मृत्यु ये सब होते हैं।

वेदास्त्याशिश्च यज्ञाश्च नियमश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कार्हिचिन्॥ 97॥

मनुस्मृति अ. 2

भोगादि विषयों में लगे हुए मनुष्यों के वेदाध्ययन, यज्ञ, नियम और तपस्या ये कभी भी सिद्धि को नहीं देते हैं।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा द्रुतेः पादादिवोदकम्॥ 99॥

मनुस्मृतिः।

सभी इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय का हास हो जावे तो मनुष्य की बुद्धि का हास हो जाता है। जैसे, छिद्रयुक्त पात्र (चर्म से बने हुए) से जल का हास हो जाता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषु पूज्यायते।

संगात्संगजायते कामः कामाक्षोधोऽभिजायते॥ 62॥

गीता-अ. 2

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति में से कामना होती है और कामना में से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्रणश्यति॥ 63॥

गीता-अ. 2

क्रोध में से मृढ़ता उत्पन्न होती है, मृढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांत हो जाने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥ 66॥

जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है। और जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख कहाँ से हो सकता है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नारीमवाभसि॥ 67॥

विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन ढौड़ता है, उसका मन वायु जैसे नौका को जल से खींच ले जाता है वैसे ही उसकी बुद्धि को जहाँ चाहें खींच ले जाता है।

तिणदोसानि खेतानि रागदोसा अयं पजा।

तस्माद् हि वीतरागेसु दिनं होति महफलं॥ 23॥

धम्पद

खेतों का दोष तृण है, प्रजा का दोष राग है, इसीलिए राग रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

यह मानव शरीर का बीज, रज एवं वीर्य है, माता-पिता के रज-वीर्य के संभोग से एवं जीवात्मा के संयोग से शरीर की संरचना होती है, गर्भस्थ शिशु माता द्वारा ग्रहित आहार रस को ग्रहण करके वृद्धिंगत होता है। जन्मान्तर के

याऽ मुख्यतः खाद्य एवं पानी को ग्रहण करके शरीर की सुरक्षा करता है एवं जीवित रहता है। जो अन्नपान आदि ग्रहण करता है, वह अन्नपान आंदि शारीरिक पाचन क्रिया के माध्यम से पचकर रस, सूधिसादि सप्त धातु परिणमन हो जाता है। जैसे कि जैनाचार्य ऊदित्य गच्छ आयुर्वेद शास्त्र कल्याण कारक में वर्णित है—

आहृतसान्नपानरसतो रुधिरं, रुधिराद्य मांसम्।
रसादपि मांसतो भवति मेद, इतोऽस्थि ततोऽपि॥
मज्जातः शुभशुक्रमित्यमिहिता, इह सप्तविधाश्च धातवः।
सोष्णसुशीरतभूतशतश्च विशेषित दोष संभवाः॥ २॥

मनुष्य जो अन्नपानादिक का ग्रहण करता है वह (पचकर) रस रूप में परिणत होता है। उस रस से रुधिर, रुधिर (रक्त) से मांस, मांस से मेद, मेद से अरिथ, अरिथ से मज्जा, मज्जा से वीर्य (शुक्र) इस प्रकार सप्त धातुओं की उत्पत्ति होती है और वे सात धातु उष्ण व शीत स्वभाव वाले भूतों की सहायता से विशिष्ट वातादि दोषों से उत्पन्न होने वाले होते हैं अर्थात् धातुओं की निष्पत्ति में भूत व दोष भी मुख्य सहायक कारक हैं।

आयुर्वेद एवं आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार जो आहार भोजन किया जाता है, वह आहार पाचन होकर रस रुधिरादि परिणमन करते हुए वीर्य रूप में परिणमन करने के लिए प्रायः 40-41 दिन लगते हैं। 40 दिन में ग्रहीत भोजन रसादि रूप परिणमन करते हुए जब वीर्य रूप परिणमन करता है, तब धातु का सार स्वरूप वीर्य होने के कारण उसका प्रमाण अत्यन्त कम होता है। 40 दिन में ग्रहीत भोजन से जो वीर्य बनता है उसका वजनप्रायः 1 1/2 तोला (15 ग्राम) होता है।

एक बार सम्पोग से जो वीर्य पान होता है यह प्राय 1 1/2 तोला होने से सम्पोग से ही 40 दिन की आहार की शक्ति नष्ट हो जाती है। पुनः उस शक्ति को सम्पादित करने के लिये 40 दिन का आहार चाहिए। अतः ‘अब्रहमचर्य से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के आहार स्वरूप वीर्य का क्षय हो जाता है। उससे अनेक शारीरिक, मानसिक क्षति होती है जैसे आयुर्वेद में कहा है।

शुक्र यानी वीर्य के क्षय होने से लिंग और पोतों में दर्द-सा, स्त्रीप्रसंग की सामर्थ्य का न होना, कभी देर से वीर्य निकलना, सुर्खीमाइल थोड़े वीर्य का निकलना ये लक्षण होते हैं। ‘‘चंक’’ में लिखा है—शुक्र क्षीण होने से कमजोरी, मुँह सूखना, पीलिया सा, अवसाद, ग्लानि, नपुंसकता और मैथुन के अन्त में वीर्य का न निकलना ये लक्षण होते हैं। (चिकित्सा चन्द्रोदय)

मेद आहार पित्त रूपी अग्नि से पक-पककर क्रम से रस, रक्त, मांस, अरिथ, मज्जा, रूप परिणमन करता है, मज्जा स्थूल भाग रूप परिणमन करता है, सूक्ष्म भाग वीर्य रूप परिणमन करता है। शुक्र पकता है, किन्तु जिस प्रकार हजार बार गलाने पर भी सोना मैला नहीं छोड़ता उसी तरह वीर्य भी मल नहीं छोड़ता। स्थूल भाग शुक्र और सूक्ष्म भाग ओज है।

शुक्र से मनुष्य को जो लाभ होता है उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

पुरुष ज्ञानी धनी और पुत्रवान होते हैं। सम्मान-योग्य, सौम्य सुन्दर और खूबसूरत होते हैं। नेत्रों में दूध-सा भरा हुआ दिखता है और उनके अन्दर से प्रसन्नता पंक्ति के समान होती है, नितम्ब भरे हुए होते हैं, ऐसे पुरुष स्त्रियों के प्यारे, कमनीय और बलवान होते हैं।

सत्त्व से लाभ—

पुरुष ऐश्वर्य सम्पन्न, आरोग्य, सम्मान-योग्य सन्तान वाले, स्मरण-शक्ति सम्पन्न, भक्ति रखने वाले, कृतज्ञ यानि पराया अहसान मानने वाले, विद्वान्, पवित्र, उत्साही, चतुर, धीर, समय पर पराक्रम के साथ युद्ध करने वाले, विषाद रहित यानी प्रसन्नचित्त, गम्भीर बुद्धि और कल्याण चाहने वाले होते हैं।

ओज से लाभ—

‘‘सुश्रुत’’ में लिखा है—रस, रक्त, मांस, मेद, अरिथ, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं। इन सातों के सार यानि तेज को ‘‘ओज’’ कहते हैं, उसे ही शास्त्र के सिद्धान्त से ‘‘बल’’ कहते हैं। ‘‘ओज’’ सोमात्मक, चिकना, सफेद, शीतल, स्थिर और सर यानि फैलाने वाला, रसादि धातुओं से अलग, कोमल, प्रशस्त और प्राणों का उत्तम आधार है। ‘‘चंक’’ में लिखा है—हृदय में जो किसी कदर पीले रंग का शुद्ध रुधिर खून दिखता है उसको ‘‘ओज’’ कहते हैं। उसके नाश होने से शरीर का भी नाश हो जाता है।

“सुश्रुत” में लिखा है—ओज रूपी बल से ही मांस का संचय और स्थिरता होती है। उसी से सब चेष्टाओं में स्वच्छन्ता, स्वर, वर्ण, प्रसन्नता तथा बाहरी और भीतरी इन्द्रियों में और मन में अपने—अपने काम की उत्कण्ठा होती है; यानि ओजबल की शक्ति से ही आँख देखने का, कान सुनने का, जीभ चखने का, गुदा मल त्याग करने का काम करता है, इसी तरह शेष और इन्द्रियों भी अपने—अपने काम करती हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव में यह ‘ओज’ व्याप्त है। इसके व्याप्त न होने से मनुष्यों के अंग—प्रत्यक्ष जर्जरीभूत हो जाते हैं।

सकल सार—

सकल सार से सहित पुरुष अति बलवान, अति गौरव—युक्त, कष्ट सहने वाला, सभी कर्मों को स्वयं कर डालने की आशा करने वाला, कल्याणकारी, विषयों में मन लगाने वाला, मजबूत शरीर वाला और स्थिर गति वाला होता है। इसका स्वर स्निध—विकना, गम्भीर, बड़ा और गूँजने वाला होता है। यह पुरुष सुखी, ऐश्वर्यवान्, धन को भोगने वाला और सम्मान का पात्र होता है। सकल सार वाले को बुढ़ापा देर से आता है और रोग भी जल्दी—जल्दी नहीं होते, अगर होते भी हैं, तो थोड़े होते हैं। इसकी सन्तान इसी के समान गुणवाली होती है।

जो इन लक्षणों के विपरीत लक्षण वाला होता है, उसे “असार” कहते हैं। जिसमें मध्यम लक्षण हो, उसे ‘मध्यसार’ कहते हैं।

वीर्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का मूल स्रोत होने का कारण होने से, वीर्य क्षय होने से उपरोक्त शक्ति भी क्षीण हो जाती है। वीर्य में सृजनात्मक शक्ति निहित है, इससे ही शारीरिक वृद्धि, सन्तान उत्पत्ति आदि सृजनात्मक क्रिया होती है। वीर्य क्षय से, सृजनात्मक शक्ति से शारीरिक वृद्धि आदि क्षय हो जाती है। ब्रह्मचारी में जो ओज, तेज, स्फूर्ति, उत्साह, स्मरण शक्ति आदि रहती है, वही शक्ति अब्रह्मचर्य में हास एवं नष्ट हो जाती है इसलिये भारतीय धर्म संस्कृति में विद्या अध्ययन के लिये अखण्ड ब्रह्मचर्य अवस्था को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अनुभव एवं प्रत्यक्ष सिद्ध सिद्धान्त है कि ब्रह्मचर्य अवस्था में जो ओज, स्फूर्ति, स्मरण—शक्ति रहती है वह स्फूर्ति अब्रह्मचर्य अवस्था में नहीं होती है। बाल्यावस्था में जो विद्यार्थी कम समय में अध्ययन कर सकते हैं, स्मरण रखते हैं, वही विषय

एक दाम्पत्य जीवन—यापन करने वाले अब्रह्मचर्य से रहने वाले व्यक्ति अधिक परिश्रम से अधिक समय व्यय करने पर ही समर्थ होते हैं। अभी तक विभिन्न दर्शन में जो बड़े—बड़े महान पुरुष, सूक्ष्मदर्शी, महानतत्ववेना हुए हैं, वे भी ब्रह्मचर्य के आशीर्वाद से ही हुए हैं। अतः ब्रह्मचर्य ही जीवन एवं अब्रह्मचर्य ही मरण है। प्राचीन महर्षियों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है कि “विन्दुपात हि मरणं” इतना ही नहीं अब्रह्मचर्य से भावहिंसा के साथ—साथ विपुल जीवों की द्रव्यहिंसा भी होती है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है—

यद्वे दरागयोगान्मै थुनमभिधीयते तद्ब्रह्म।

अवतरतितत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥ 107 ॥

पुरुषार्थं सिद्धयुपाय॥

जो वेद के राग—रूप योग से स्त्री पुरुषों का सहवास कहा जाता है, सो अब्रह्म है और उस सहवास में प्राणि वध का सब जगह सद्भाव होने से हिंसा होती है।

यदपि क्रियते किञ्चिन्मदनोद्रेकादनङ्गरमणादि।

तत्रापि भवति हिंसा रागाद्युत्पत्ति तत्त्वात् ॥ 109 ॥

इसके अतिरिक्त काम की उत्कटता से जो कुछ अनंग रमणादि किया जाता है, उसमें भी रागादिकों की उत्पत्ति के वश से हिंसा होती है।

मैथुनाचरणे मूढ़े प्रियन्ते जन्तुकोटयः

योनिरन्धसमुत्पन्ना लिङ्गसंघटपीडिताः ॥ 21 ॥

ज्ञानार्थव

हे मूर्ख! मैथुन के सेवन में योनि छिद्र में उत्पन्न हुए करोड़ों जीव लिंग के संघर्षण से पीड़ित होकर मारे जाते हैं।

हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्बत्।

बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्बत् ॥ 108 ॥

जिस प्रकार तिलों की नली में तप्त लोहे को डालने से तिल नष्ट होते हैं—भुन जाते हैं, उसी प्रकार मैथुन के समय योनि में भी बहुत से जीव मरते हैं।

योनिस्तनं प्रदे शेषु हृदि कक्षांतरे ष्वपि।

अतिसूक्ष्माः मनुष्याश्च जायन्ते योषितां सदा ॥

नवलक्षां जिवोऽत्रैव मियन्ते मैथुनेन भो।
इत्येवं जिननाथे न प्रोक्तं केवललोचनात् ॥

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

स्त्री के गुह्य अंग, योनि, स्तन, हृदय, काँख आदि अंग में अति सूक्ष्म मनुष्य जातीय लक्ष्यपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते रहते हैं। एक बार संभोग से 9 लक्ष (9 लाख) जीव विध्वंस हो जाते हैं। यह जिनेन्द्र भगवान् चराचर को युगपत् प्रकाशन करने वाले, अवलोकन करने वाले लोचन से निरीक्षण करके बताये हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त वर्तमान वैज्ञानिक के शोध-बोध के माध्यम से सूक्ष्म अणुवीक्षण के द्वारा परीक्षण-निरीक्षण किया गया है। वर्तमान वैज्ञानिक तथ्य यह है कि 15 बिन्दु वीर्य में 60 मिलियन (6 करोड़) से लेकर 110 मिलियन सूक्ष्म जीव रहते हैं। जीवों का आकार बाल्यावस्था में स्थित पूँछधारी शिशु मेंढक (लाखा या प्यूपा) के समान है। ये जीव सूक्ष्मदर्शक में स्पष्ट चलते-फिरते दिखाई देते हैं। सामने का भाग सिर के समान और पीछे का भाग पूँछ के समान है। सिर को आगे करके वे जीव ढौँडते-फिरते हैं।

माता का रज एसिड(अम्लीय) युक्त होता है। पिता का वीर्य एल्केलाइन (क्षार) युक्त होता है। संभोग में रज और वीर्य के संयोग होने पर एसिड एवं एल्केलाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रतिक्रिया होती है, उससे उस वीर्य में रहने वाले जीवों का संहार हो जाता है। इस वैज्ञानिक तथ्य से सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित जैन सिद्धान्त की पुष्टि होती है। अतः, अब्रह्मचर्य से महान् जीवों की हिंसा होती है। वह हिंसा एक मनुष्य स्वजीवित काल में अन्य रूप से नहीं कर सकता है। रावण, कंस, दुर्योधन, हिटलर, मुसोलिनी आदि हिंसा प्रेमी नृशंस व्यक्ति भी जो अपने जीवन काल में भी जिन जीवों की हिंसा नहीं कर पाये थे उससे एक अब्रह्मचारी संभोग में उससे बहुगुणित हिंसा कर लेता है। इसलिये अहिंसा के सूक्ष्म सर्वांगीण अनुभव करने वाले एवं प्रचार करने वाले तीर्थकरों ने अब्रह्मचर्य को महापाप माना है।

द्रव्यहिंसादि कथञ्चित् पापबंध का कारण नहीं हो सकती है परन्तु अब्रह्मचर्य एकान्तः पाप जनक ही है।

महा अब्रह्मः वेश्या रमण का दुष्परिणाम

ब्रह्मभावस्य धातकः अनीतिभावस्य मूलं ।
इह परलोकदुःखदं, पण्यनारीणं संभोगम् ॥

वेश्या गमन करने से ब्रह्मचर्य भावना का घात होता है, वेश्या गमन अनीति का मूल है, इह लोक परलोक में दुःखदायी है।

वेश्या को पुण्य स्त्री भी कहते हैं। वे स्त्रियाँ पैसा लेकर अपने शील को पर पुरुष को बेचती हैं। रुपये के लोभ से वे रोगी, पापी, हीन, दीन व्यक्तियों के साथ भी भोग करती हैं जिससे उनकी योनि में अनेक संक्रामक रोग होते हैं। उनके साथ जो भोग करता है, उसके लिंग में मरण काल के समान तीव्र वेदना होती है। वह, पर स्त्री गमिनी पुरुष लड़ा के कारण किसी को उस रोग के बारे में नहीं बताता है, जिससे उसका औषध पानी भी कठिन हो जाता है। इस प्रकार वह पुरुष रुपये देकर रोगों को खरीदता है। उसे सब कोई धूर्ण की दृष्टि से देखते हैं। वेश्या में आसक्त होकर अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता है। जिससे गरीबी के दिन गुजारता है, परिवार के लोगों को कष्ट में डालता है। तदभव मोक्षगामी, स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञानी चारुदत्त, जिसने विवाह के पश्चात् अपनी नव युवती सुन्दरी स्त्री को देखा तक नहीं था, वही चारुदत्त वसन्त सेना नाम की वेश्या के कारण 12 वर्ष तक वेश्या के घर में रहा और 32 लाख स्वर्ण दीनारें खो डालीं एवं अन्त में संडास गृह में उसे डलवा दिया गया। इस प्रकार धन, योवन, धर्म, स्वास्थ्य, शील आदि को नाश करने वाला वेश्यागमन का त्याग करना चाहिए।

महान् दुःख की बात है कि कुछ प्रादेशिक सरकारों के द्वारा (महाराष्ट्रादि सरकार) वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने के कारण, वेश्याओं की संख्या बहुत बढ़ रही है। परन्तु विवेकी सरकार तथा जनता को चाहिये कि इसका पूर्ण रूप से विरोध करें, जिससे देश में शील, न्याय, नीति कायम रहे।

वेश्या के यहाँ आना-जाना उसका सहवास करना, वेश्याओं का नृत्य देखना उसका गाना सुनना, उससे लेन-देन करना आदि वेश्या गमन के ही अंग है।

जो भौतिकवादी, विलासप्रिय, अमेरिका आदि देश शील का मखोल उड़ाते थे, वे आज एझ़ रोग के कारण शील को महत्व देने लगे हैं। नीतिकारों ने कहा है—

“आर्तनरा: धर्मपराभवन्ति”

—दुःखी जन धर्म परायण होते हैं।

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, तो दुःख काहे को होय॥

यह एडस रोग वेश्या गमन से होता है। इसका वर्णन नवभारत टाईम्स में 29 मई, 1988 में आए हुए विषय को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

लेख का नाम है 'यौन क्रान्ति का अन्त'। 'जान देने और दिल लुटाने के मुहावरे आज सद्याई बन गये हैं। मनचलों की दुनिया में खलबली मच गई है। रंगीन रातें संगीन बनती जा रही हैं। लाल बत्ती वाले इलाकों में आशिक और माशूक बे-मौत मरे जा रहे हैं। तमाम वेश्यायें विष कन्याओं में बदली जा रही हैं। परकिया प्रेम कीदुहाई देने वाले घर लौट रहे हैं। कौमार्य और ब्रह्मचर्य जैसी गई गुजरी बातें फिर से श्रद्धा की पात्र हो गई हैं। जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उच्छृंखलता में आकण्ठ ढूबे हुए थे, वे आज अपने किए पर पछता रहे हैं तथा कथित यौन क्रान्ति आखिरी साँसे गिन रही है।'

यह अजीब जीव एक किस्म का वायरस यानी विषाणु है। जितना छोटा उतना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास 100 नेनोमीटर या 0.1 मायक्रोमीटर मापा गया है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव ने आज लगभग 133 देशों में एडस का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी दहशत पैदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु की शोध 1983 में पेरिस के डॉक्टर लुक मोटारनीर ने और 1984 में अमेरिका के डॉक्टर रार्बट गैली ने की है।

एडस का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आंतक का मानो वामन अवतार है। एडस का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है, पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा प्रणाली के पहरेदार को दबोचता है, उसके बाद चाहे फल्यु हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खून में ऐन्टीबॉडी नहीं बनती Resostamce grow नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एडस के विषाणु फैल जाएँ तो चन्द दिनों में ही मौत, रोगी को अपने पंजे में दबोच देता है। अमेरिका में सतरादिक में ब्लू फिल्मों के बेताज बादशाह माने जाने वाले हेल्मस का 14,000 रमणियों का रिकार्ड है। जुलाई, 1986 में एडस के वायरस के चपेट में आये और मार्च, 1988 में निमोनिया ने प्राण

लिये। अक्सर अतिसार, बुखार और वजन घट जाने से एडस के लक्षण प्रगत हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओज हीन होता हुआ एडस रोगी सूखकर कॉटा हो जाता है। एडस का वायरस सबसे पहले दिमाग पर हमला बोलता है और सनक का शिकार हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले अफ्रीकी देशों में ही 20 लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एडस का वायरस फैल रहा है सारी दुनिया में 50 लाख से 1 करोड़ लोग इस घातक वायरस के जीते जागते मनमाने धूम रहे हैं। इनमें से 15 लाख अकेले अमेरिका में हैं।

यूनिसेफ का ताजा रिपोर्ट के अनुसार अगले दशक में 50 लाख 3 करोड़ तक बच्चे भी एडस के शिकार हो जायेंगे। इस समय भी 6 हजार बच्चे जाम्बिया में और 14000 अमेरिका में एडस से पीड़ित हैं, इनको यह रोग माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं है। केवल 2 बच्चों को यह रोग एडसयुक्त माता के स्तनपान से पहुँचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सुइयों के कारण भी एडस फैलता है।

तथा कथित यौन-क्रान्ति आखिरी साँसे गिन रही है। दुनिया भर में दुराचार के अड्डों में सनसनी फैल गई है। जो काम सन्त महात्मा नहीं कर पाये, वह 'एडस' की बीमारी फैलाने वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया। इसीलिये एक बार फिर पश्चिमी स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

अभी विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी अग्नि से महावीर की वाणी जलकर निखर उठी। इस प्रकार सत्य विज्ञान रूपी अग्नि जलेगी उतनी ही महावीर की वाणी अधिक से अधिक निखरेगी। असत्य रूपी कोयला जलकर भस्म हो जायेगा, परन्तु सत्य रूपी सोना तपकर शुद्ध बनता है, और भी चमकता है।

मैंने विचार किया इतने सूक्ष्म विषय को भी सन्मति वर्धमान महावीर ने परीक्षण करके और मैथुन से होने वाले जीव विध्वंस को जानकर विश्व को अमर सन्देश दिया- 'तिलोय पूज्य हवइ बंभ' तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है। वीर ने डंका के चोट पर कहा, अन्य हिंसादि पाप, बिना भाव से हो सकते हैं, किन्तु अब्रह्म पाप बिना भाव हिंसा से नहीं हो सकता है।

मैं स्वयं परीक्षा प्रधानी होने से परीक्षण से मेरी श्रद्धा धर्म में भी अधिक दृढ़ हो गई।

॥४५॥ त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य ॥४६॥

वाउव जालमच्चेइ, पिया लोगंहि इत्थिओ॥ १५॥

जैसे वायु अग्नि की ज्वाला को पार कर जाता है, वैसे ही महापग्रहमी पुरुष इस लोक में स्त्री-मोह की सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं।

मणपल्हायजणणी, कामराग-विवड्ढणी।

बंभचेररओ भिक्खू, थी-कहं तु विवज्ञए॥ ११॥

ब्रह्मचर्य-परायण साधक को चाहिये कि वह मन में अनुग्रह उत्पन्न करने वाली तथा विषय-वासनादि की वृद्धि करने वाली स्त्री-कथा का निर्गतर त्याग करे।

सं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।

बंभचेररओ भिक्खू, निद्यसो परिवज्ञए॥ १२॥

ब्रह्मचर्य में रस रखने वाला साधक, स्त्रियों के परिचय और उनके साथ बैठ कर बार-बार वार्तालाप करने के अवसरों का, सदा के लिये परित्याग कर दे।

जतुकुंभे जहा उवज्ञोई।

संवासे विदु विसीएज्ञा॥ १३॥

जैसे अग्नि के पास रहने से लाख का घड़ा पिघल जाता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष भी स्त्री के सहवास में विषाद को प्राप्त होता है, अर्थात् उसका मन संक्षुद्ध बन जाता है।

जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था।

एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे, न बंभयारिस्स खमो निवासो॥ १४॥

जैसे विडालों के वास-स्थान के पास रहना चूहों के लिये योग्य नहीं है, वैसे ही स्त्रियों के निवास-स्थान के बीच रहना ब्रह्मचारी के लिये योग्य नहीं है।

जहा कुकुडपोअस्स, निद्यं कुललओ भयं।

एवं खु बंभयारिस्स, इत्थी विग्गहओ भयं॥ १५॥

जिस तरह मुर्गी के बच्चे को बिल्ली से प्राणपहरण का भय सदा बना रहता है, ठीक वैसे ही ब्रह्मचारी को भी नित्य स्त्री-सम्पर्क में रहने से अपने ब्रह्मचर्य के भंग होने का भय बना रहता है।

न रुवलावण्णविलासहांस, न जंपियं इंगियपेहियं वा।

इत्थीण विंत्सि निवेसइत्ता, ददृढ़ु ववस्से समणे तवस्सी॥ १६॥

॥४७॥ त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य ॥४८॥

तपरवी श्रमण स्त्रियों के स्वप्न-लावण्य, विलास, हास-परिहास, भाषण-संभाषण, रनेह, चेष्टा अथवा कटाक्षयुक्त दृष्टि को अपने मन में स्थान न दे और उसे देखने का प्रयास न करें।

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकितणं च।

इत्थीजणसाऽरियज्ञाण जुगं, हियं सया बंभवए रथाण॥ १७॥

ब्रह्मचर्य में लीन और धर्म-ध्यान के योग्य साधु स्त्रियों को रागदृष्टि से न देखे, स्त्रियों की अभिलाषा न करे, मन से उनका चिन्तन न करे, और वचन से उनकी प्रशंसा न करे। यह सब सदा के लिये ब्रह्मचारी के हित में है।

जई त काहिसी भाव, जा जा दिच्छसि नारिओ।

वायाविद्वोवहडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि॥ १८॥

हे साधक! जिन-जिन स्त्रियों पर तेरी दृष्टि पड़े, उन सबके प्रति भोग की अभिलाषा करेगा तो वायु से कम्पायमान हड वृक्ष की तरह तू अस्थिर बन जायेगा और अपने चित की समाधि (स्थिरता) खो बैठेगा।

हांस किडं रयं दणं, सहसा वित्तासियाणि य।

बंभचेररओ थीण, नाणुचिन्ने कयाइ वि॥ १९॥

ब्रह्मचर्य-प्रेमी साधक ने पूर्वविश्वा में स्त्रियों के साथ हास्य द्यूतक्रीड़ा, शरीर स्पर्श का आनन्द, स्त्री का मान-मर्दन करने के लिये धारण किये हुए गर्व तथा विनोद के लिये की गई सहज-चेष्टादि क्रियाओं को जो कुछ अनुभव किया हो, उन सबका मन से कदापि विचार न करना चाहिये।

मा पेह पुरा-पणामए, अभिकंखे उवर्हि धुणित्तए।

जे दूमणएहि नो नया, ते जाणंति समाहिमाहिय॥ २०॥

हे प्राणी! पूर्वानुभूत विषय-भोगों का स्मरण न कर, न ही उनकी कामना कर। सभी माया-कर्मों को दूर कर। क्योंकि मन को दुष्ट बनाने वाले स्त्रियों द्वारा जो नहीं झुकता है, वही जिनोपदिष्ट समाधि को जानता है।

जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ।

एविन्दियगीविपगामभोइणो, न बंभयारिस्स हियाय कस्सई॥ २१॥

जैसे प्रचुर ईर्धन वाले वन में लगी हुई तथा वायु द्वारा प्रेरित दावाग्नि शान्त

नहीं होती, वैसे ही सरस(गरिष्ठ) एवं अधिक परमाण में आहार करने वाले ब्रह्मचारी की इन्द्रिय-रूपी अग्नि भी शान्त नहीं होती।

विभूषा इतिथसंसग्गो, पणीयं रसभोयणं।

नरस्तत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा॥ २२॥

आत्म-गवेषा—आत्मान्वेषक साधक के लिये देह—विभूषा, स्त्री—संसर्ग (सम्पर्क) तथा रसपूर्ण स्वादिष्ट भोजन तालपुट विष के समान है।

विभूसं परिवज्जोऽग्ना, शरीरपरिमंडणं।

बंभवेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए॥ २३॥

ब्रह्मचर्य—प्रेमी साधक हमेशा अलंकार आदि की विभूषा का त्याग कर शरीर की शोभा न बढ़ाएँ तथा शृंगार सजाने की कोई भी क्रिया न करे।

सदे रुबे य गंधे य, रसे कासे तहेव य।

पंचविहे, कामगुणे, निच्छसो परिवज्ञए॥ २४॥

ब्रह्मचर्य—प्रेमी साधक को शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—इन पाँच प्रकार के काम, गुणों का सदा के लिये त्याग कर देना चाहिये।

दुःखाए कामभोगे य, निच्छसो परिवज्ञए।

संकाटाणाणि सव्वाणि, वज्जेऽग्ना पणिहाणेवं॥ २५॥

एकाग्र मन रखने वाला ब्रह्मचारी दुर्जय काम भोगों को सदा के लिए त्याग दे और सर्व प्रकार के शंकास्पद स्थानों का परित्याग करे।

विसएसु मणुन्नेसु पेमं नाभिनिवेसए।

अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पुगालाणय॥ २६॥

शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—रूप समर्त पुद्गलों के परिणामों को अनित्य समझकर ब्रह्मचारी साधक मनोज्ञ विषयों में आसक्त न बने।

रम्यमापातमात्रे यत्, परिणामेऽतिदारुणम्।

किंपाकफलसंकाशं, तत्कः सेवेत मैथुनम्॥ २७॥

मैथुन प्रारम्भ में तो रमणीय मालूम पड़ता है, किन्तु परिणाम में अत्यन्त भयानक है। वह किंपाक फल के समान है। जैसे किंपाक फल सुन्दर दिखलाई देता है, किन्तु उसके खाने से मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार मैथुन सेवन ऊपर ऊपर

से रमणीय लगने पर भी आत्मा का धात करने वाला है। कौन विवेकवान् पुरुष ऐसे मैथुन का सेवन करेगा?

स्त्री सम्भोगेन यः कामज्वरं प्रतिचिकीर्षति।

स हुताशं घृताहुत्या, विध्यापयितुमिच्छति॥ २८॥

जो पुरुष विषय—वासना का सेवन करके काम—ज्वर का शमन करना चाहता है, वह घृत की आहुति के द्वारा आग को बुझाने की इच्छा करता है।

वरं ज्वलदयस्तम्भ—परिरम्भो विधियते।

न पुनर्नरक—द्वार—रामा—जघन—सेवनम्॥ २९॥

आग से तपे हुए लोहे के स्तम्भ का आलिंगन करना श्रेष्ठ है, किन्तु विषय—वासना की पूर्ति के लिये नरक द्वार—स्वरूप स्त्री—जघन का सेवन करना उचित नहीं है।

प्राणभूतं चरित्रस्य, परब्रह्मैककारणम्।

समाचरन् ब्रह्मचर्य, पूजितैरपि पूज्यते॥ ३०॥

ब्रह्मचर्य संयम का प्राण है तथा परब्रह्म—मोक्ष का एकमात्र कारण है। ब्रह्मचर्य का परिपालक पूज्यों का भी पूज्य बन जाता है। अर्थात् ब्रह्मचारी सुरों, असुरों एवं नरेन्द्रों का भी पूजनीय हो जाता है।

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढ़संहनना नराः।

तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः॥ ३१॥

ब्रह्मचर्य से जीव दीर्घायु, सुन्दर, दृढ़ शरीर वाला, तेजस्वी और अतिशय बलवान् होता है।

पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्ञा,

एवं दुक्खा पमुच्चासि।

मानव! अपने आपको ही निग्रह (संयत) कर। स्वयं के निग्रह (संयम) से ही तृ दुःख से मुक्त हो सकता है।

जे एं नामे, से बहुं नामे।

जो अपने आप को नमा लेता है—जीत लेता है वह समग्र संसार को नमा लेता है।

इमेण चेव जुज्ञाहि,
किं ते जुज्ञेण बज्ञओ।

अपने अन्तर (के विकारों) से ही युद्ध कर। बाहर के युद्ध से तुझे क्या प्राप्त होगा?

जद्गारिहं खलु दुल्लभं।

विकारों से युद्ध करने के लिए फिर यह अवसर (मानवजन्म) मिलना दुर्लभ है।

अप्णो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिं।

जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह दूसरों पर अनुशासन कैसे कर सकता है?

अप्पा चेव दमेयबो, अप्पा हु खलु दुददमो।

अप्पा दंतो सुही होई, अस्सिं लोए परथ्य य॥

अपने आप पर नियन्त्रण रखना चाहिए। अपने आप पर नियन्त्रण रखना वस्तुतः कठिन है। अपने आप पर नियन्त्रण रखने वाला ही इस लोक तथा परलोक में सुखी होता है।

वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तदेण य।

माहं परेहिं दम्मन्तो बंधणेहिं वहेहि य॥

दूसरे वध और बन्धन आदि से दमन करें, इससे तो अच्छा है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपनी (इच्छाओं का) दमन कर लूँ।

जो सहस्रं सहस्राणं, संगमे दुज्जए जिए।

एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥

भयंकर युद्ध में हजारों हजार दुर्दान्त शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा अपने आप को जीत लेना ही सबसे बड़ी विजय है?

स्वं अप्पे जिए जियं।

एक अपने (विकारों) को जीत लेने पर सबको जीत लिया जाता है।

एग्प्पा अजिए सत्ू।

स्वयं की अविजित-असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है।

सददेसु अ रुवेसु अ, गंधेसु रहेसु तह य फासेसु।
न वि रिङ्गइ न वि दुस्सइ; एसा खलु इंदिअप्पणिही॥

शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में जिसका चित्त न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता है, उसी का इन्द्रिय-निग्रह प्रशस्त होता है।

जस्स खलु दुप्पणिहिआणि इंदिआइं तवं चरंतस्स।
सो हीरइ असहीणेहिं सारहो व तुरंगेहिं॥

जिस साधक की इन्द्रियाँ, कुमार्गामिनी हो गई हैं, वह दुष्ट घोड़ों के वश में पड़े सारथी की तरह उत्पथ में भटक जाता है।

निगगहिए मणपसरे, आत्मा परमप्पा हवइ।
मन के विकल्पों को रोक देने पर आत्मा परमात्मा बन जाता है।

मणखइए मरणे, मरंति सेणाइं इन्दियं मर्याइ।
मन रूप राजा के मर जाने पर इन्द्रियां रूप सेना तो स्वयं ही मर जाती है। (अतः मन को मारने-वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए।)

सुण्णीकयमि चित्ते, षूणं अप्पा पयासेइ।
चित्त को (विषयों को) शून्य कर देने पर उसमें आत्मा का प्रकाश झलक उठता है।

मणं परिजाणाइ से णिगगंथे।
जो अपने मन को अच्छी तरह परखना जानता है, वही सद्वा निर्ग्रन्थ होता है।

मणोसाहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावइ।
तं सम्पं तु निगण्हामि धम्मसिकरखाइ कंथगं॥

यह मन बड़ा साहसिक, भयंकर, दुष्ट घोड़ा है जो बड़ी तेजी के साथ चारों ओर दौड़ रहा है। मैं धर्म-शिक्षारूप लगाम से उस घोड़े को अच्छी तरह अपने वश में किये हुए हूँ।

जइया मणु णिगगंथ जिय तइया तुहु णिगगंथु।
जइया तुह णिगगंथ जिय, तो लब्धइ सिव पंथु॥

हे जीव! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ (रागयुक्त) हो जाएगा, तभी तू सद्वा निर्ग्रन्थ बनेगा, और जब सद्वा निर्ग्रन्थ बनेगा तभी शिवपंथ मिलेगा।

इंगलिश—सूक्त

Man is worse than an animal when he acts like an animal.

मनुष्य जिस समय पशु—तुल्य आचरण करता है, उस समय वह पशुओं से भी नीचे गिर जाता है।

— रविन्द्र

Behaviour is a mirror in which every one displays his image.

आचरण एक दर्पण के सदृश है, जिसमें हर मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब दिखाता है।

— गेटे

A beautiful behaviour is better than a boautiful; form; it gives a higher pleasure than statues and pictures it is the finest of fine art.

सुन्दर आचरण, सुन्दर शरीर से अच्छा है। मूर्ति और चित्र की अपेक्षा यह उच्चकोटि का आनन्द देता है। यह कलाओं में सुन्दरतम् कला है। —एम्सन

Most powerful is he who has himself in his own power.

जो आत्म—संयमी है, वही सर्वशक्तिमान् है।

— सेनेका

Character is simple a habit long continued.

चारित्र केवल एक स्थायी स्वभाव है।

— प्लूटाक

When wealth is lost, nothing is lost;

When health is lost, something is lost;

When character is lost all is lost;

There is no substitute for beauty of mind and strength of character.

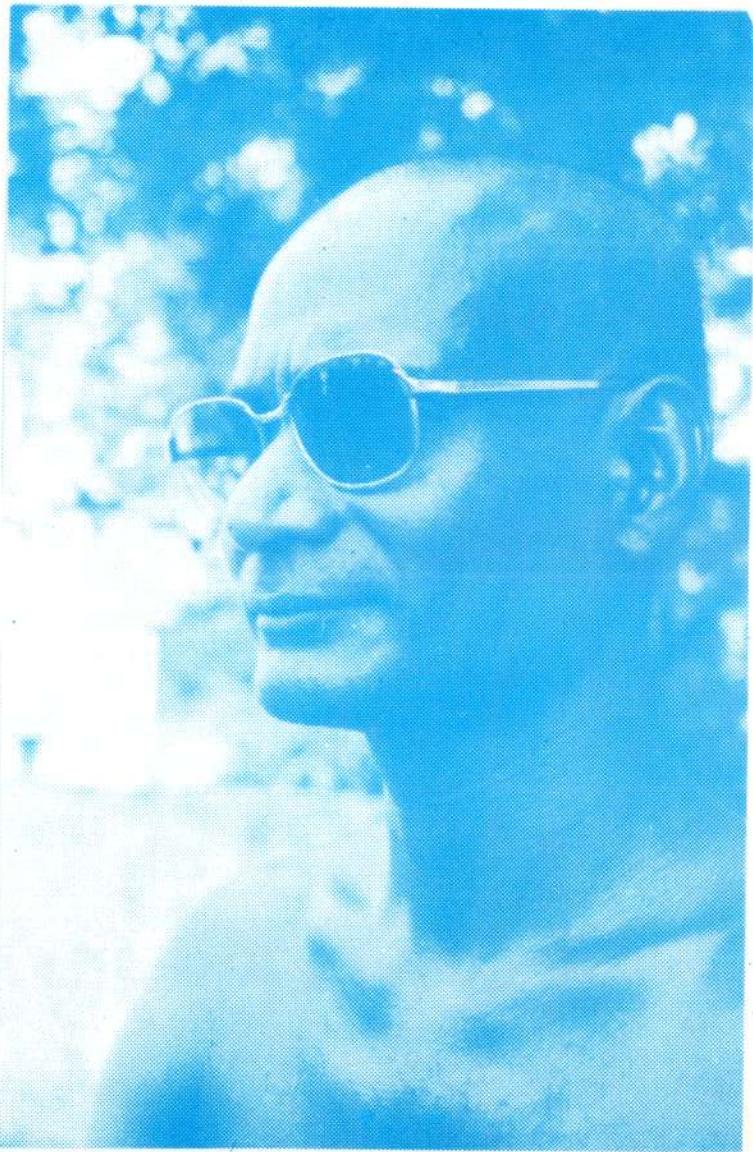
मन के सौन्दर्य और चरित्रबल की समानता करने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

— जे. एलन

Be a man of right action and high character.

सम्पर्क कर्मशील और उच्च चरित्रवान् मनुष्य बनो।

— नेपोलियन



आचार्य लल कनकनन्दी